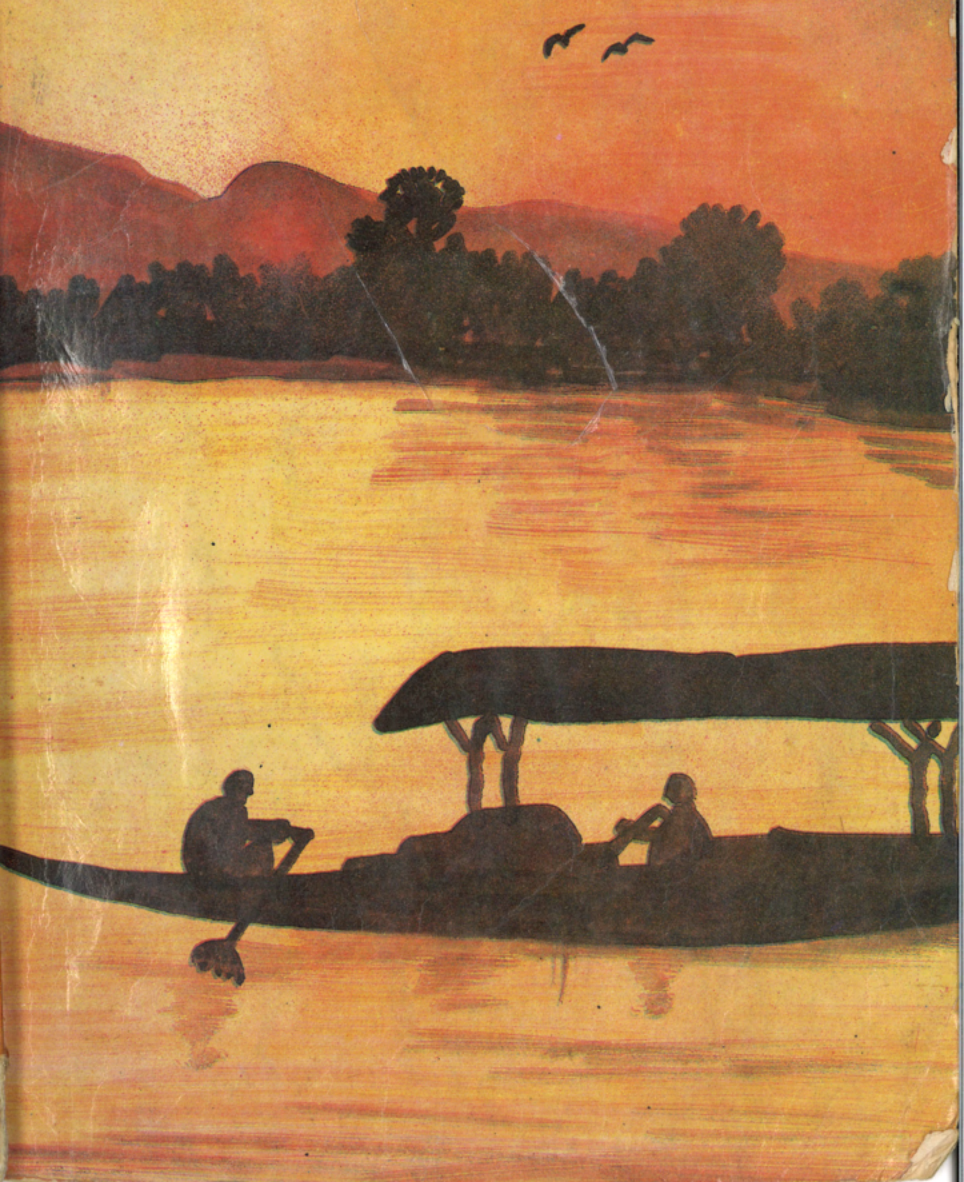
कथा सरोवर



अमित बंसल
1996, पुणे

[इंडियन सर्टीफिकेट ऑफ सेकेंडरी एजुकेशन (ICSE) परीक्षा के लिए हिन्दी विषय
में निर्धारित पुस्तक के रूप में स्वीकृत]

कथा-सरोवर

सम्पादक
प्रभाकर द्विवेदी

मधु प्रकाशन
नई दिल्ली-110002

[इंडियन सर्टिफिकेट ऑफ सेकंडरी एजुकेशन (ICSE) परीक्षा के लिए हिन्दी विषय में निर्धारित पुस्तक के रूप में स्वीकृत]

कथा-सरोवर

सम्पादक

प्रभाकर द्विवेदी

मुद्रा प्रकाशन

नई दिल्ली-110002

"कागज़ के मूल्यों में 33% अप्रत्याशित मूल्य वृद्धि के कारण प्रकाशकों को विवश होकर पुस्तकों पर आंशिक मूल्य वृद्धि करनी पड़ी है। पाठकगण हमारी इस विवशता को ध्यान में रखते हुए पूर्ववत सहयोग देते रहेंगे।"

—भारतीय शैक्षिक प्रकाशक महासंघ, नई दिल्ली-110 055

प्रथम संस्करण
जनवरी 1987

मूल्य: रु. 22.00

हेमंत गुप्ता द्वारा मुद्रा प्रकाशन, 4858 ए/24,
दरियागंज, नई दिल्ली-110002 के लिए प्रकाशित।

मुद्रक :- शिवानी आफसेट, शाहदरा, दिल्ली-32

प्रस्तावना

हिन्दी कहानियों का यह संकलन इंडियन सर्टिफिकेट ऑफ सेकंडरी एजुकेशन (ICSE) परीक्षा के पाठ्यक्रम के अनुसार तैयार किया गया है। इंग्लिश माध्यम से शिक्षा पाने वाले विद्यार्थियों का ध्यान रखते हुए इस पुस्तक में विषयों की रोचकता और भाषा की सरलता का ध्यान रखा गया है। इस संकलन में हमने हिन्दी की पन्द्रह श्रेष्ठ कहानियां चुन कर दी हैं। कहानियों को काल-क्रम से देने का प्रयत्न किया गया है। संकलन में हमने अपने किशोर पाठकों की उम्र और स्तर को ध्यान में रखा है। देश के भावी नागरिकों में देश-प्रेम, मानवता एवं जीवन के निरंतर मूल्यों के संस्कार जमाने के लिए हमने ऐसी ही कहानियों को चुना है जो इस उद्देश्य को पूरा करें। कहानियों के मर्म को समझते हुए हमारे छात्र उनकी समुचित सराहना भी कर सकें, इस विचार से कहानियों के अंत में प्रश्न अभ्यास भी दिए गए हैं। प्रश्न पारम्परिक भी हैं और लीक से हट कर भी। साहित्य और साहित्यकार के प्रति युवा पाठकों की रुचि जगाने के निमित्त हमने प्रत्येक कहानी के प्रारम्भ में लेखक का आधिकारिक परिचय भी दिया है और कहानी की सराहना में कुछ वाक्य भी। विश्वास है संग्रह पाठकों को पसंद आएगा और उनमें साहित्यिक बोध जगाएगा।

क्रम

प्रेमचन्द

प्रेमचन्द का जन्म 31 जुलाई, 1880 ई. को वाराणसी जिले के लमही ग्राम में हुआ था। छोटी उम्र में ही पिता की मृत्यु हो जाने के कारण इनका बचपन आर्थिक संकट में बीता। फलस्वरूप मैट्रिक पास करने के बाद इन्हें एक प्राइमरी स्कूल में अध्यापक बनना पड़ा। नौकरी करते हुए ही इन्होंने बी.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की। इसके बाद शिक्षा विभाग में नौकरी करते हुए ये सब-डिप्टी-इंस्पेक्टर ऑफ स्कूल्स हो गए। किंतु नौकरी के कारण इनका लेखन-कार्य नहीं हो पाता था। इसलिए सरकारी नौकरी छोड़कर इन्होंने अपना जीवन साहित्य-साधना में लगा दिया। 8 अक्तूबर, 1936 ई. को इनकी मृत्यु हो गई।

प्रेमचन्द का वास्तविक नाम धनपतराय था। प्रारम्भ में इन्होंने इसी नाम से कहानियां लिखीं। लेकिन अंग्रेज़ सरकार को इनकी रचनाओं में देशद्रोह की गंध मिली जिस कारण इन्होंने पहले नवाबराय फिर प्रेमचन्द नाम से लिखना शुरू किया जिसे अंत तक इन्होंने अपनाए रखा।

प्रेमचन्द ने लगभग तीन सौ कहानियां लिखी हैं जो ***'मानसरोवर'*** नाम से आठ भागों में संकलित हैं। इन्होंने बहुत उच्च कोटि के उपन्यास भी लिखे जिस कारण इन्हें उपन्यास-सम्राट कहा जाता है। इनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं— ***'सेवा सदन'***, ***'निर्मला'***, ***'रंगभूमि'***, ***'कर्मभूमि'***, ***'ग़बन'*** और ***'गोदान'***। ***'मंगलसूत्र'*** इनका अंतिम उपन्यास था जिसे ये पूरा नहीं कर पाए। इन्होंने तीन नाटक भी लिखे— ***'कर्बला'***, ***'संग्राम'*** और ***'प्रेम की वेदी'***। इन्होंने अनेक निबंध भी लिखे जो ***'विविध प्रसंग'*** नाम से तीन भागों में प्रकाशित हुए हैं।

प्रेमचन्द को मानव मन का जानकार माना जाता है। ***'परीक्षा'*** कहानी में इन्होंने मानवीय पक्ष पर प्रकाश डाला है। सभी लोग अपने-अपने गुणों को प्रकट कर रहे हैं ताकि दीवान का पद मिल जाए। दिखावे के ऐसे वातावरण में जिस युवक के मन में दया, परोपकार, मानवता और निस्वार्थ सेवा का सागर लहरा रहा है, वही प्रेमचन्द का आदर्श पात्र अथवा नायक है। सरल, मुहावरेदार, बोलचाल की भाषा में रोचक कथा प्रस्तुत करना प्रेमचन्द की विशेषता है।

परीक्षा

जब रियासत देवगढ़ के दीवान सरदार सुजानसिंह बूढ़े हुए तो उन्हें परमात्मा की याद आई। जाकर महाराज से उन्होंने विनय की—"दीनबन्धु! दास ने श्रीमान् की सेवा चालीस साल तक की, अब कुछ दिन परमात्मा की भी सेवा करने की आज्ञा चाहता है। दूसरे, अब अवस्था भी ढल गई, राज-काज संभालने की शक्ति नहीं रह गई, कहीं भूल-चूक हो जाय तो बुढ़ापे में दाग लगे, सारी ज़िन्दगी की नेकनामी मिट्टी में मिल जाय।"

राजा साहब अपने अनुभवशील और नीति-कुशल दीवान का बड़ा आदर करते थे। उन्होंने बहुत समझाया। लेकिन जब दीवान साहब ने न माना तो हारकर उन्होंने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। पर शर्त यह लगा दी कि रियासत के लिए नया दीवान उन्हीं को खोजना पड़ेगा।

दूसरे दिन देश के प्रसिद्ध पत्रों में यह विज्ञापन निकला—"देवगढ़ के लिए एक सुयोग्य दीवान की आवश्यकता है। जो सज्जन अपने को इसके योग्य समझें, वे वर्तमान दीवान सरदार सुजानसिंह की सेवा में उपस्थित हों। यह जरूरी नहीं कि वे ग्रेजुएट हों, मगर उन्हें हृष्ट-पुष्ट होना आवश्यक है। मन्दाग्नि के मरीज़ों को यहां तक कष्ट उठाने की कोई ज़रूरत नहीं। एक महीने तक उम्मीदवारों के रहन-सहन, आचार-विचार की देखभाल की जाएगी; विद्या कम, परन्तु कर्तव्य का अधिक विचार किया जाएगा। जो महाशय इस परीक्षा में पूरे उतरेंगे वे ही इस उच्च पद पर सुशोभित होंगे।"

इस विज्ञापन ने सारे मुल्क में हलचल मचा दी। ऐसा ऊंचा पद और किसी प्रकार की कैद नहीं। केवल नसीब का खेल है। सैकड़ों आदमी अपना-अपना भाग्य परखने के लिए चल खड़े हुए। देवगढ़ में नए-नए और रंग-बिरंगे मनुष्य दिखाई देने लगे। प्रत्येक रेलगाड़ी से उम्मीदवारों का एक मेला-सा उतरता। कोई पंजाब से चला आता था, तो कोई मद्रास से। कोई नए फैशन का प्रेमी था, तो कोई पुरानी सादगी पर मिटता हुआ था। पंडितों और मौलवियों को भी अपने-अपने भाग्य की परीक्षा करने का अवसर मिला। बेचारे सनद के नाम को रोया करते थे, सो यहां उसकी कोई ज़रूरत नहीं थी। रंगीन तमगे, चोगे और नाना प्रकार के अंगरखे और

कनटोप देवगढ़ में अपनी सजधज दिखाने लगे, क्योंकि सनद की कैद न होने पर भी सनद से परदा तो ढका रहता है।

सरदार सुजानसिंह ने इन महानुभावों के आदर-सत्कार का बड़ा अच्छा प्रबन्ध कर दिया था। लोग अपने-अपने कमरों में बैठे हुए रोज़ेदार मुसलमानों की तरह महीने के दिन गिना करते थे। हर एक मनुष्य अपने जीवन को अपनी बुद्धि के अनुसार अच्छे रूप में दिखाने की कोशिश करता था। मिस्टर 'अ' नौ बजे दिन तक सोया करते थे, आजकल वे बगीचे में टहलते उषा का दर्शन करते थे। मिस्टर 'ब' को हुक्का पीने की लत थी पर आजकल बहुत रात गए किवाड़ बन्द करके अंधेरे में सिगरेट पीते थे। मिस्टर 'स', 'द' और 'ज' से उनके घरों पर नौकरों की नाक में दम था, लेकिन ये सज्जन आजकल 'आप' और 'जनाब' के बग़ैर नौकर से बातचीत नहीं करते थे। महाशय 'क' नास्तिक थे—हक्सले के उपासक। मगर आजकल उनकी धर्मनिष्ठा देखकर मन्दिर के पुजारी को पदच्युत हो जाने की शंका लगी रहती। मिस्टर 'ल' को किताबों से घृणा थी, परन्तु आजकल वे बड़े-बड़े धर्मग्रन्थ खोले पढ़ने में डूबे रहते थे। जिससे बातचीत कीजिए वह नम्रता और सदाचार का देवता ही मालूम होता था। शर्माजी बड़ी रात से ही वेद-मंत्र पढ़ने लगते थे, और मौलवियों को नमाज़ तलावत के सिवा और कोई काम ही न था। लोग समझते थे कि एक महीने का झंझट है, किसी तरह काट लें, कहीं कार्य सिद्ध हो गया तो कौन पूछता है!

लेकिन मनुष्यों का वह बूढ़ा जौहरी आड़ में बैठा देख रहा था कि इन बगुलों में हंस कहां छिपा है।

एक दिन नए फैशन वालों को सूझी कि आपस में हाकी का खेल हो जाय। यह प्रस्ताव हाकी के मंजे खिलाड़ियों ने पेश किया। यह भी तो आखिर एक विद्या है, इसे क्यों छिपा रखें, सम्भव है, कुछ हाथों की सफाई ही काम कर जाय।

चलिए तय हो गया, कोर्ट बन गए, खेल शुरू हो गया और गेंद किसी दफ्तर के अप्रैंटिस की तरह ठोकरें खाने लगी।

रियासत देवगढ़ में यह खेल बिल्कुल निराला था। पढ़े-लिखे भलेमानुस शतरंज और ताश जैसे गम्भीर खेल खेलते थे। दौड़-कूद के खेल बच्चों के खेल समझे जाते थे।

खेल बड़े उत्साह से जारी था। धावे के लोग जब गेंद लेकर तेज़ी से उठते तो ऐसा जान पड़ता था कि कोई लहर बढ़ती चली आती है। लेकिन दूसरी ओर के खिलाड़ी इस बढ़ती हुई लहर को इस तरह रोक लेते थे मानो लोहे की दीवार है।

संध्या तक यह धूम-धाम रही। लोग पसीने में तर हो गए। खून की गरमी आंख और चेहरे से झलक रही थी। हांफते-हांफते बेदम हो गए,

लेकिन हार-जीत का निर्णय न हो सका। अंधेरा हो गया था। इस मैदान से ज़रा दूर हटकर एक नाला था। उस पर कोई पुल न था। पथिकों को नाले में घुसकर आना पड़ता था। खेल अभी बन्द हुआ था और खिलाड़ी लोग बैठे दम ले रहे थे कि एक किसान अनाज से भरी हुई गाड़ी लिए उस नाले में आया। लेकिन कुछ तो नाले में कीचड़ था और कुछ उसकी चढ़ाई उतनी ऊंची थी कि गाड़ी ऊपर न चढ़ सकती थी। वह कभी बैलों को ललकारता, कभी पहिये को हाथों से ढकेलता; लेकिन बोझ अधिक था और बैल कमज़ोर। गाड़ी ऊपर को न चढ़ती, और चढ़ती भी तो कुछ दूर चढ़कर फिर खिसककर नीचे पहुंच जाती। किसान बार-बार ज़ोर लगाता और बार-बार झुंझलाकर बैलों को मारता, लेकिन गाड़ी उभरने का नाम न लेती। बेचारा इधर-उधर निराश होकर ताकता, मगर वहां कोई सहायक नज़र न आता था। गाड़ी को अकेले छोड़ कर वह कहीं जा भी न सकता था। बड़ी विपत्ति में फंसा हुआ था। इसी बीच खिलाड़ी हाथों में डण्डे लिए झूमते-झामते उधर से निकले। किसान ने उनकी तरफ सहमी हुई आंखों से देखा, परन्तु किसी से मदद मांगने का साहस न हुआ। खिलाड़ियों ने भी उसको देखा, मगर बन्द आंखों से। उनमें सहानुभूति का नाम न था; उनमें स्वार्थ था, मद था, मत्सर था, उदासीनता थी, वात्सल्य का नाम भी न था। लेकिन उसी समूह में ऐसा मनुष्य भी था, जिसके हृदय में दया थी और साहस था। आज हाकी खेलते हुए उसके पैरों में चोट लग गई थी। लंगड़ाता हुआ वह वह धीरे-धीरे चला आता था। अकस्मात् उसकी निगाह गाड़ी पर पड़ी। वह ठिठक गया। उसे किसान को देखते ही सब बात ज्ञात हो गई। हाकी किनारे पर रख दी, कोट उतार डाला और किसान के पास जाकर बोला, "मैं तुम्हारी गाड़ी निकाल दूं?"

किसान ने देखा कि गठे हुए बदन का एक लम्बा आदमी सामने खड़ा है। डरकर बोला, "हुज़ूर! आपसे कैसे कहूं?" युवक ने कहा, "मालूम होता है, तुम यहां बड़ी देर से फंसे हुए हो। अच्छा, तुम गाड़ी पर जाकर बैलों को साधो, मैं पहिये को ढकेलता हूं। अभी गाड़ी ऊपर जाती है।"

किसान गाड़ी पर जाकर बैठा, युवक ने पहिये को ज़ोर लगाकर खिसकाया। कीचड़ बहुत ज्यादा था। वह घुटने तक ज़मीन में गड़ गया, लेकिन उसने हिम्मत न हारी।

उसने फिर ज़ोर लगाया, उधर किसान ने बैलों को ललकारा, बैलों को सहारा मिला, उनकी भी हिम्मत बंध गई, उन्होंने कंधे झुकाकर एक बार ज़ोर लगाया, बस गाड़ी नाले के ऊपर थी।

किसान युवक के सामने हाथ जोड़कर खड़ा हो गया और बोला, "महाराज! आपने आज मुझे उबार लिया, नहीं तो सारी रात यहीं बैठना पड़ता।"

युवक ने हंसकर कहा, "अब मुझे कुछ इनाम देते हो?"

किसान ने गम्भीर भाव से कहा, ''नारायण चाहेंगे तो दीवानी आपको ही मिलेगी।''

युवक ने किसान की तरफ़ गौर से देखा। उसके मन में एक सन्देह हुआ—कहीं यह सुजानसिंह तो नहीं? आवाज़ मिलती है। चेहरा-मोहरा भी वही है। किसान ने भी उसकी ओर तीव्र दृष्टि से देखा। शायद वह उसके दिल के सन्देह को भांप गया। मुस्कराकर बोला, ''गहरे पानी में पैठने से ही मोती मिलता है।''

निदान महीना पूरा हुआ। चुनाव का दिन आ पहुंचा। उम्मीदवार लोग प्रातःकाल से ही अपनी क़िस्मत का फैसला सुनने के लिए उत्सुक थे। दिन काटना पहाड़ हो गया। प्रत्येक के चेहरे पर आशा और निराशा के रंग आते थे। नहीं मालूम आज किसके नसीब जागेंगे, न जाने किस पर लक्ष्मी की कृपादृष्टि होगी। संध्या समय राजा साहब का दरबार सजाया गया, शहर के रईस और धनाढ्य लोग, राजा के कर्मचारी और दरबारी तथा दीवानी के उम्मीदवार, सब रंग-बिरंगी सज-धज बनाए दरबार में आ विराजे। उम्मीदवारों के कलेजे धड़क रहे थे।

तब सरदार सुजानसिंह ने खड़े होकर कहा—''मेरे दीवानी के उम्मीदवार महाशयो, मैंने आप लोगों को जो कुछ कष्ट दिया हो, उसके लिए क्षमा कीजिए। मुझे इस पद के लिए ऐसे पुरुष की आवश्यकता थी जिसके हृदय में दया हो और साथ-ही-साथ आत्म-बल भी। हृदय वही है, जो उदार हो; आत्म-बल वही है, जो आपत्ति का वीरता के साथ सामना करे, और इस रियासत के सौभाग्य से हमको ऐसा पुरुष मिल गया। ऐसे गुण वाले संसार में कम हैं, और जो हैं, वे कीर्ति और मान के शिखर पर बैठे हुए हैं। उन तक हमारी पहुंच ही नहीं। मैं रियासत को पण्डित जानकीनाथ सा दीवान पाने पर बधाई देता हूं।''

रियासत के कर्मचारियों और रईसों ने पं. जानकीनाथ की तरफ़ देखा और उम्मीदवारों के दल की आंखें उधर उठीं, मगर उन आंखों में सत्कार था और इन आंखों में ईर्ष्या।

सरदार साहब ने फिर फरमाया—''आप लोगों को यह स्वीकार करने में कोई आपत्ति न होगी कि जो पुरुष स्वयं ज़ख्मी होने पर भी एक गरीब किसान की भरी हुई गाड़ी को दलदल से निकालकर नाले के ऊपर चढ़ाए, उसके हृदय में साहस, आत्म-बल और उदारता का निवास है। ऐसा आदमी गरीबों को कभी न सताएगा। उसका संकल्प दृढ़ है, जो उसके चित्त को स्थिर रखेगा। वह चाहे धोखा खाए, परन्तु दया और धर्म के मार्ग से कभी न हटेगा।''

प्रश्न अभ्यास

(1) राजा साहब दीवान सुजानसिंह का बड़ा आदर करते थे क्योंकि—

(क) सुजान सिंह बूढ़े हो गए थे।
(ख) वे बड़े अनुभवशील और नीतिकुशल दीवान थे।
(ग) वे राजा साहब के रिश्तेदार थे।
(घ) वे रियासत देवगढ़ के दीवान थे।
सही उत्तर पर √ लगाओ।

(2) दीवान के पद के विज्ञापन में किस बात की मांग की गई थी?

उचित उत्तर पर √ लगाओ।
(क) उम्मीदवार को ग्रेजुएट होना चाहिए।
(ख) उम्मीदवार को कर्तव्यपरायण होना चाहिए।
(ग) उम्मीदवार को खिलाड़ी होना चाहिए।
(घ) उम्मीदवार को विद्वान होना चाहिए।

(3) "लेकिन मनुष्यों का वह बूढ़ा जौहरी आड़ में बैठा हुआ देख रहा था कि इन बगुलों में हंस कहां छिपा हुआ है।"

—ऊपर लिखे वाक्य में 'बूढ़ा जौहरी', 'बगुलों' और 'हंस' शब्दों का प्रयोग किन-किन के लिए किया गया है? नीचे लिखे उत्तरों में सही उत्तर पर निशान लगाओ।

(क) **बूढ़ा जौहरी**—राजा साहब, पंडित जानकीनाथ, सरदार सुजानसिंह।
(ख) **बगुलों**—उम्मीदवारों, पक्षियों, खिलाड़ियों।
(ग) **हंस**—राजा साहब, दीवान बनने योग्य व्यक्ति, गाड़ीवान।

(4) इस कहानी का सच्चा संदेश नीचे लिखे वाक्यों में ढूंढो—

(क) जिसके हृदय में साहस, आत्मबल और उदारता है वही प्रजा का सच्चा पालक है।
(ख) जो खिलाड़ी है वही राजकाज जानता है।
(ग) दीवानी का पद पाने के लिए बूढ़ा होना ज़रूरी नहीं है।

(5) किसान किस विपत्ति में फंसा हुआ था? उससे उसे छुटकारा कैसे मिला?

(6) सरदार सुजानसिंह किस प्रकार के व्यक्ति को रियासत का दीवान बनाना चाहते थे? उनकी कसौटी पर कौन व्यक्ति खरा उतरा?

(7) नीचे लिखे वाक्य किसने कहे, किससे कहे, क्यों कहे?

(क) नारायण चाहेंगे, तो दीवानी आपको ही मिलेगी।
(ख) गहरे पानी में पैठने से ही मोती मिलता है।
(ग) हुज़ूर, मैं आपसे कैसे कहूं?

(8) नीचे लिखे वाक्य को पढ़कर प्रश्नों के उत्तर दो।

"इस विज्ञापन ने सारे मुल्क में हलचल मचा दी।"
(क) यह कौन-सा विज्ञापन था? इसने हलचल क्यों मचा दी?
(ख) इसे किसने निकलवाया था? विज्ञापन का क्या असर पड़ा?

(ग) विज्ञापन के फलस्वरूप किसे और क्यों चुना गया?

(घ) विज्ञापन क्यों निकलवाया गया था?

(9) नीचे लिखे वाक्य को पढ़कर प्रश्नों के उत्तर दो।

"बेचारा इधर-उधर निराश होकर ताकता, मगर वहां कोई सहायक नज़र न आता था।"

(क) यह 'बेचारा' कौन था? वह निराश क्यों था?

(ख) वह किस प्रकार की सहायता चाहता था? क्या उसे सहायता मिली? अगर मिली, तो सहायक कौन था?

(ग) उसने किस प्रकार सहायता की?

(10) नीचे लिखे वाक्य को पढ़कर प्रश्नों के उत्तर दो।

"अब मुझे कुछ इनाम देते हो?"

(क) यह वाक्य, किसने, किससे और कब कहा?

(ख) क्या प्रश्नकर्ता को इनाम मिला? यदि हां, तो इनाम में क्या मिला और क्यों मिला?

(11) नीचे लिखे अवतरण में आए मुहावरों के नीचे रेखा खींचो। ध्यान दो कि प्रेमचन्द मुहावरों वाली चुस्त भाषा लिखते थे जिससे वर्णन में जान आ जाती है।

"उम्मीदवार लोग प्रातःकाल से ही अपनी क़िस्मत का फ़ैसला सुनने के लिए उत्सुक थे। दिन काटना पहाड़ हो गया। प्रत्येक के चेहरे पर आशा और निराशा के रंग आते थे। नहीं मालूम आज किसके नसीब जागेंगे। न जाने किस पर लक्ष्मी की कृपादृष्टि होगी। उम्मीदवारों के कलेजे धड़क रहे थे।"

जयशंकर प्रसाद

जयशंकर प्रसाद का जन्म वाराणसी के एक प्रतिष्ठित वैश्य परिवार में सन् 1890 में हुआ। बाल्यकाल में ही पिता की मृत्यु हो जाने के कारण व्यवसाय एवं गृहस्थी का पूरा भार इनके कंधों पर आ गया, फलस्वरूप प्रसाद जी को स्कूली शिक्षा केवल आठवीं कक्षा तक ही मिल पाई। किंतु अपनी लगन से इन्होंने हिन्दी, संस्कृत, पाली, उर्दू, प्राकृत और अंग्रेज़ी भाषाओं और उनके साहित्यों का समुचित ज्ञान घर पर ही प्राप्त कर लिया। इतिहास, दर्शन, धर्मशास्त्र, पुरातत्व आदि के ये प्रकांड विद्वान थे। सन् 1937 में 15 नवम्बर को अल्पायु में ही क्षयरोग से उनकी मृत्यु हो गई।

प्रसाद की प्रतिभा सभी विषयों में दिखाई देती थी जिसका ज्वलंत उदाहरण इनके काव्य, उपन्यास, नाटक, कहानी और निबंध आदि में मिलता है। इनकी सबसे पहली कविता ***'भारतेन्दु'*** नामक पत्रिका में सन् 1906 में प्रकाशित हुई। इसके बाद ***'इन्दु'*** नामक एक पत्रिका का इन्होंने स्वयं प्रकाशन शुरू किया। प्रसाद के प्रमुख नाटकों के नाम हैं— ***'अजात शत्रु', 'स्कन्दगुप्त', 'चन्द्रगुप्त'*** और ***'ध्रुवस्वामिनी'***। इन्होंने दो उपन्यास लिखे— ***'कंकाल'*** और ***'तितली', 'इरावती'*** नामक उपन्यास उन्होंने प्रारम्भ किया लेकिन पूरा न कर पाए। इनके कहानी-संग्रह हैं— ***'आंधी', 'इन्द्रजाल', 'प्रतिध्वनि', 'छाया'*** और ***'आकाशदीप'***। प्रसाद जी की सबसे प्रसिद्ध रचना ***'कामायनी'*** महाकाव्य है। काव्य की अन्य पुस्तकें हैं— ***'आंसू', 'झरना'*** एवं ***'लहर'***। ***'काव्य और कला तथा अन्य निबंध'*** में इनके विचारप्रधान निबंध संकलित हैं।

प्रसाद जी ने अपनी अन्य रचनाओं की भांति कहानियां भी अधिकतर भारतीय संस्कृति अथवा भारत के मध्ययुगीन इतिहास की पृष्ठभूमि पर लिखी हैं। इन्होंने उपन्यासों के प्रतिकूल मुख्यतः आदर्शवादी कहानियां ही लिखी हैं जिनमें ऐतिहासिक वातावरण के सजीव चित्रण की ओर पूरा ध्यान दिया है। इन्होंने सभी कहानियों में संस्कृतनिष्ठ भाषा का प्रयोग किया है जो कहीं-कहीं कठिन भी हो गई है।

'ममता' कहानी में ऐतिहासिक पृष्ठभूमि बड़े जीवंत रूप में प्रस्तुत की गई है। घटनाओं और परिस्थितियों के बीच कहानी के प्रमुख पात्रों के चरित्रों का चित्रण करने में लेखक को विशेष सफलता मिली है। इस कहानी में प्रकृति के मनोरम चित्र सहज ही उभर आए हैं। ब्राह्मण कन्या ममता आदर्शों में बंधी हुई है। दूसरी ओर उसके मन में नारी सुलभ भय भी है। इसी भय की छाया में कहानी का विकास होता है और घटनाएं बदलती हैं। संकोच के कारण युवती ममता सम्मुख न आकर छिपी रही फलस्वरूप जीवनभर के लिए उसने वैधव्य का भार अकेले ही ढोया।

ममता

रोहतास-दुर्ग के प्रकोष्ठ में बैठी हुई युवती ममता, शोण के तीक्ष्ण गम्भीर प्रवाह को देख रही थी। ममता विधवा थी। मन में वेदना, मस्तक में आंधी, आंखों में पानी की बरसात लिये, वह सुख के कंटक-शयन में विकल थी। वह रोहतास-दुर्गपति के मन्त्री चूड़ामणि की अकेली दुहिता थी। फिर उसके लिए कुछ अभाव होना असम्भव था, परन्तु वह विधवा थी। हिन्दू विधवा संसार में सबसे तुच्छ निराश्रय प्राणी है—तब उसकी विडम्बना का कहां अन्त था?

चूड़ामणि ने चुपचाप उसके प्रकोष्ठ में प्रवेश किया। शोण के प्रवाह में, उसके कलनाद में अपना जीवन मिलाने में वह बेसुध थी। पिता का आना न जान सकी। चूड़ामणि व्यथित हो उठे। स्नेह-पालिता पुत्री के लिए क्या करें, यह स्थिर न कर सकते थे। लौटकर बाहर चले गए। ऐसा प्रायः होता था, पर आज मन्त्री के मन में बड़ी दुश्चिन्ता थी।

एक पहर बीत जाने पर वे फिर ममता के पास गए। उस समय उनके पीछे दस सेवक चांदी के बड़े थालों में कुछ लिए खड़े हुए थे; कितने ही मनुष्यों के पद-शब्द सुन ममता ने घूमकर देखा। मन्त्री ने सब थालों को रखने का संकेत किया। अनुचर थाल रखकर चले गए।

ममता ने पूछा—"यह क्या है पिताजी?"

"तेरे लिए बेटी, उपहार है।" कहकर चूड़ामणि ने आवरण उलट दिया। स्वर्ण का पीलापन उस सुनहली सन्धया में विकीर्ण होने लगा। ममता चौंक उठी।

"इतना स्वर्ण! यह कहां से आया?"

"चुप रहो ममता! यह तुम्हारे लिए है।"

"तो क्या आपने म्लेच्छ का उत्कोच स्वीकार कर लिया? पिताजी, यह अनर्थ है, अर्थ नहीं। लौटा दीजिए, पिताजी। हम लोग ब्राह्मण हैं इतना सोना लेकर क्या करेंगे?"

"इस पतनोन्मुख प्राचीन सामन्त-वंश का अन्त समीप है, बेटी! किसी भी दिन शेरशाह रोहतास पर अधिकार कर सकता है, उस दिन मन्त्रित्व न रहेगा, तब के लिए बेटी।"

"हे भगवान! तब के लिए? विपद् के लिए इतना आयोजन! परमपिता की इच्छा के विरुद्ध इतना साहस? पिताजी, क्या भीख न मिलेगी? क्या कोई हिन्दू भू-पृष्ठ पर न बचा रह जाएगा, जो ब्राह्मण को दो मुट्ठी अन्न दे सके? असम्भव है। फेर दीजिए पिताजी! मैं कांप रही हूं—इसकी चमक आंखों को अन्धा बना रही है!"

"मूर्ख है।"—कहकर चूड़ामणि चले गए।

दूसरे दिन जब डोलियों का तांता भीतर आ रहा था, ब्राह्मण मन्त्री चूड़ामणि का हृदय धक-धक करने लगा। वह अपने को रोक न सका। उसने जाकर रोहतास-दुर्ग के तोरण पर डोलियों का आवरण खुलवाना चाहा। पठानों ने कहा—"यह महिलाओं का अपमान करना है।"

बात बढ़ गई। तलवारें खिंचीं, ब्राह्मण-मन्त्री वहीं मारा गया और राजा-रानी-कोष सब छली शेरशाह के हाथ पड़े। निकल गई, ममता। डोली में भरे हुए पठान सैनिक दुर्ग भर में फैल गए, पर ममता न मिली।

[2]

काशी के उत्तर में धर्मचक्र विहार, मौर्य और गुप्त सम्राटों की कीर्ति का खंडहर था। भग्न चूड़ा, तृण-गुल्मों से ढके हुए प्राचीर, ईंटों के ढेर में बिखरी हुई भारतीय शिल्प की विभूति, ग्रीष्म-रजनी की चन्द्रिका में अपने को शीतल कर रही थी।

जहां पंचवर्गीय भिक्षु गौतम का उपदेश ग्रहण करने के लिए पहले मिले थे, उसी स्तूप के भग्नावशेष की मलिन छाया में एक झोंपड़ी के दीपालोक में एक स्त्री पाठ कर रही थी।

पाठ रुक गया। एक भीषण और हताश आकृति दीप के मन्द प्रकाश में सामने खड़ी थी। स्त्री उठी, उसने कपाट बन्द करना चाहा, परन्तु उस व्यक्ति ने कहा—"माता! मुझे आश्रय चाहिए।"

"तुम कौन हो?"—स्त्री ने पूछा।

"मैं मुगल हूं। चौसा-युद्ध में शेरशाह से विपन्न होकर रक्षा चाहता हूं। इस रात अब आगे चलने में असमर्थ हूं।"

"क्या शेरशाह से!" स्त्री ने अपने होंठ काट लिये।

"हां माता!"

"परन्तु तुम भी वैसे ही क्रूर हो, वही भीषण रक्त की प्यास, वही निष्ठुर प्रतिबिम्ब तुम्हारे मुख पर भी है! सैनिक मेरी कुटी में स्थान नहीं! जाओ, कहीं दूसरा आश्रय खोज लो।"

"गला सूख रहा है, साथी छूट गए हैं, अश्व गिर पड़ा है—इतना थका हूं—इतना!"—कहते-कहते वह व्यक्ति धम-से बैठ गया और उसके सामने ब्रह्माण्ड घूमने लगा। स्त्री ने सोचा, यह विपत्ति कहां से आई।

उसने जल दिया, मुगल के प्राणों की रक्षा हुई। वह सोचने लगी—"सब विधर्मी दया के पात्र नहीं—मेरे पिता का वध करने वाले आततायी!'

घृणा से उसका मन विरक्त हो गया।

स्वस्थ होकर मुगल ने कहा—"माता! तो फिर मैं चला जाऊं?"

स्त्री विचार कर रही थी—'मैं ब्राह्मण हूं, मुझे तो अपने धर्म—अतिथिदेव की उपासना—का पालन करना चाहिए। परन्तु यहां नहीं-नहीं, सब विधर्मी दया के पात्र नहीं! परन्तु यह दया तो नहीं, कर्त्तव्य करना है। तब?'

मुगल अपनी तलवार टेककर उठ खड़ा हुआ। ममता ने कहा—"क्या आश्चर्य है कि तुम भी छल करो।"

"छल! नहीं, तब नहीं, स्त्री! जाता हूं, तैमूर का वंशधर स्त्री से छल करेगा? जाता हूं। भाग्य का खेल है।"

ममता ने मन में कहा—'यहां कौन दुर्ग है! यही झोंपड़ी न; जो चाहे ले ले, मुझे तो अपना कर्तव्य-पालन करना पड़ेगा।' वह बाहर चली आई और मुगल से बोली—"जाओ भीतर, थके हुए भयभीत पथिक! तुम चाहे कोई हो, मैं तुम्हें आश्रय देती हूं। मैं ब्राह्मण-कुमारी हूं; सब अपना धर्म छोड़ दें तो मैं भी क्यों छोड़ दूं?" मुगल ने चन्द्रमा के मन्द प्रकाश में वह महिमामय मुखमण्डल देखा। उसने मन-ही-मन नमस्कार किया। ममता पास ही टूटी हुई दीवारों में चली गई। भीतर, थके पथिक ने झोंपड़ी में विश्राम किया।

प्रभात में खंडहर की सन्धि से ममता ने देखा, सैकड़ों अश्वारोही उस प्रान्त में घूम रहे हैं। वह अपनी मूर्खता पर अपने को कोसने लगी।

अब उस झोंपड़ी से निकलकर उस पथिक ने कहा—"मिरजा! मैं यहां हूं।"

शब्द सुनते ही प्रसन्नता की चीत्कार-ध्वनि से वह प्रान्त गूंज उठा। ममता अधिक भयभीय हुई। पथिक ने कहा—"वह स्त्री कहां है? उसे खोज निकालो।" ममता छिपने के लिए अधिक सचेष्ट हुई। वह मृगदाव में चली गई। दिन-भर उसमें से न निकली। सन्ध्या को जब उन लोगों के जाने का उपक्रम हुआ, तो ममता ने सुना, पथिक घोड़े पर सवार होते हुए कह रहा था—"मिरजा! उस स्त्री को मैं कुछ न दे सका। उसका घर बनवा देना, क्योंकि मैंने विपत्ति में यहां विश्राम पाया था। यह स्थान भूलना मत।"—इसके बाद वे चले गए।

[3]

चौसा के मुगल-पठान-युद्ध को बहुत दिन बीत गए। ममता अब सत्तर वर्ष की वृद्धा है। वह अपनी झोंपड़ी में एक दिन पड़ी थी। शीतकाल का

प्रभात था। उसका जीर्ण कंकाल खांसी से गूंज रहा था। ममता की सेवा के लिए गांव की दो-तीन स्त्रियां उसे घेरकर बैठी थीं, क्योंकि वह आजीवन सबके दुख-सुख की सहभागिनी रही थी।

ममता ने जल पीना चाहा, एक स्त्री ने सीपी से जल पिलाया। सहसा एक अश्वारोही उसी झोंपड़ी के द्वार पर दिखाई पड़ा। वह अपनी धुन में कहने लगा—"मिरजा ने जो चित्र बनाकर दिया है, वह तो इसी जगह का होना चाहिए। वह बुढ़िया मर गई होगी, अब किससे पूछूं कि एक दिन शहंशाह हुमायूं किस छप्पर के नीचे बैठे थे? यह घटना भी तो सैंतालीस वर्ष से ऊपर की हुई।"

ममता ने अपने विकल कानों से सुना। उसने पास की स्त्री से कहा, "उसे बुलाओ।"

अश्वारोही पास आया। ममता ने रुक-रुककर कहा—"मैं नहीं जानती कि वह शहंशाह था, या साधारण मुगल; पर एक दिन इसी झोंपड़ी के नीचे वह रहा था। मैंने सुना था, वह मेरा घर बनाने की आज्ञा दे गया था। मैं आजीवन अपनी झोंपड़ी खुदवाने के डर से भयभीत रही थी। भगवान् ने सुन लिया, मैं आज इसे छोड़े जाती हूं। अब तुम इसका मकान बनाओ या महल। मैं अपने चिर-विश्राम-गृह में जाती हूं।"

वह अश्वारोही अवाक् खड़ा था। बुढ़िया के प्राण-पक्षी अनन्त में उड़ गए।

वहां एक अष्टकोण मन्दिर बना और उस पर शिलालेख लगाया गया—"सातों-देशों के नरेश हुमायूं ने एक दिन यहां विश्राम किया था। उनके पुत्र अकबर ने उनकी स्मृति में यह गगनचुम्बी मन्दिर बनवाया।"

पर उसमें ममता का कहीं नाम न था।

प्रश्न अभ्यास

(1) सब प्रकार के सुखों के होते हुए भी ममता के जीवन में किस बात की कमी थी?

(2) ममता को प्रसन्न करने के लिए चूड़ामणि ने कौन-सी युक्ति निकाली?

(3) स्वर्ण लाने का चूड़ामणि ने क्या तर्क दिया?

(4) चूड़ामणि की मृत्यु कैसे हुई? नीचे के उत्तरों में सही उत्तर पर √ लगाओ।

(क) वह क्षयरोग से मरा।

(ख) उसे विष दिया गया।

(ग) पठानों के साथ युद्ध करता हुआ वह मारा गया।

(घ) शोण नदी की लहरें उसे निगल गईं।

(5) झोंपड़ी के स्थान पर वहां क्या बना?

(6) नीचे लिखे वाक्य को पढ़कर प्रश्नों के उत्तर दो।

"यहां कौन दुर्ग है! यही झोंपड़ी न; जो चाहे ले ले, मुझे तो अपना कर्तव्य-पालन करना पड़ेगा।"

(क) यह किसका कहा या सोचा हुआ वाक्य है? यदि ममता का है, तो बताओ उसने ऐसा क्यों कहा? ममता झोंपड़ी में क्यों रह रही थी? वह पथिक को आश्रय देने में कतरा क्यों रही थी?

(ख) उससे किसने आश्रय मांगा और क्यों मांगा?

(ग) ममता किस कर्त्तव्य-पालन की बात कह रही है?

(7) नीचे लिखे वाक्यों में से जो इस कहानी के सम्बन्ध में सही हो, उस पर √ लगाओ।

(क) यह एक ऐतिहासिक कहानी है।

(ख) यह एक सामाजिक कहानी है।

(ग) यह एक जासूसी कहानी है।

(घ) यह एक दार्शनिक कहानी है।

(8) नीचे लिखे सही तथ्यों के सामने √ निशान लगाओ।

(क) ममता विधवा थी और झोंपड़ी में रहती थी।

(ख) चूड़ामणि रोहतास के किले के सामंत के मंत्री थे।

(ग) यह कहानी मुगलों और पठानों के युद्ध से सम्बन्धित है। √

(घ) ममता स्वाभिमानी थी इसी से उसने पिता को घूस लेने से मना किया। √

(ङ) यह युद्ध ममता के कारण लड़ा गया। ×

(च) इस कहानी में सोन नदी का वर्णन है जिसे उस जमाने में शोण कहते थे। √

(9) नीचे लिखे वाक्य को पढ़कर प्रश्नों के उत्तर दो।

"गला सूख रहा है, साथी छूट गए हैं, अश्व गिर पड़ा है।"

(क) यह वाक्य किसने कहा है? यह वाक्य सुनकर ममता क्या सोचने लगी?

(ख) वह इस परेशानी में कैसे पड़ा?

(ग) उसकी विपत्ति की कथा सुनकर ममता ने उसके लिए क्या किया?

(घ) बदले में उसने ममता के लिए क्या करना चाहा? क्या वह उसके लिए कुछ कर पाया?

(10) नीचे लिखे अवतरणों को पढ़कर उन शब्दों को रेखांकित करो जिनके आधार पर तुम कह सकते हो कि प्रसाद जी की भाषा कठिन होती है।

(क) "युवती ममता शोण के तीक्ष्ण गम्भीर प्रवाह को देख रही थी। मन में वेदना, मस्तक में आंधी, आंखों में पानी की बरसात लिए, वह सुख के कंटक-शयन में विकल थी। वह रोहतास दुर्गपति के मंत्री चूड़ामणि की अकेली दुहिता थी।"

(ख) "काशी के उत्तर में धर्मचक्र विहार, मौर्य और गुप्त सम्राटों की कीर्ति का खण्डहर था। भग्न चूड़ा, तृण-गुल्मों से ढके हुए प्राचीर, ईंटों के ढेर में बिखरी हुई भारतीय शिल्प की विभूति, ग्रीष्म-रजनी की चन्द्रिका में अपने को शीतल कर रही थी।"

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

रवीन्द्रनाथ ठाकुर का जन्म बंगाल के एक अत्यंत संपन्न और सुसंस्कृत ब्राह्मण परिवार में 6 मई, 1861 को हुआ था। उनकी शिक्षा दीक्षा घर पर ही हुई। बचपन में ही हर विषय की शिक्षा देने के लिए अलग-अलग अध्यापक उन्हें घर पर ही पढ़ाते थे। इससे छोटी उम्र में ही वे सभी विषयों के ज्ञाता हो गए। प्रकृति के निकट रहने के कारण उनके भावुक मन का कवि जाग उठा और वे छोटी उम्र में ही कविता लिखने लगे। कुछ बड़े हुए तो उन्हें बैरिस्टरी पढ़ने के लिए विदेश भेजा गया। लेकिन स्कूल कालेज की चारदीवारी उन्हें बांध न पाई और वे परीक्षा में बैठे बिना ही स्वदेश लौट आए। देश-विदेश में भ्रमण के अतिरिक्त रवीन्द्रनाथ ने बंगाल के गांवों में भी बहुत भ्रमण किया। अपने अनुभवों को वे कहानियों में उतारने लगे। फिर तो रवि-किरणों की भांति रवीन्द्र प्रतिभा भी विकास पाने लगी। कविता, नाटक, उपन्यास, यात्रा-विवरण, कहानी, निबंध, भाषण, चित्रकला आदि में उनकी प्रतिभा प्रस्फुटित होने लगी। सन् 1912 ई. में उनकी कविताओं का संग्रह ***'गीतांजलि'*** प्रकाशित हुआ जिसे 1913 ई. में नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया। इस पुरस्कार से सम्मानित होने वाले वे प्रथम एशियाई थे। रवीन्द्रनाथ की मृत्यु 7 अगस्त, 1941 को हुई।

साहित्य के अतिरिक्त रवीन्द्र का योगदान चित्रकला, शिक्षा, राजनीति एवं संगीत के क्षेत्र में भी माना जाता है। उनके चित्रों की भूरि-भूरि प्रशंसा होती रहती है। विश्वभारती नाम से शांतिनिकेतन में स्थापित विश्वविद्यालय की शिक्षा पद्धति संसार में अद्वितीय है। गांधी, नेहरू आदि के निकट संपर्क में रहकर उन्होंने भारत की स्वाधीनता के लिए संघर्ष किया था। भारत का राष्ट्रगान ***'जन गण मन'*** गीत उनका ही लिखा हुआ है।

रवीन्द्रनाथ ने एक हजार से अधिक कविताएं और दो हजार गीत लिखे हैं। ***'गीतांजलि'*** के अतिरिक्त ***'नैवेद्य'***, ***'पूरबी'***, ***'वलाका'***, ***'क्षणिका'***, ***'चित्रा'*** और ***'संध्या संगीत'*** आदि उनके काव्य संग्रह हैं। उनके प्रमुख उपन्यास हैं— ***'गोरा'***, ***'घरे बाइरे'***, ***'चोखेर बालि'***, ***'योगायोग'*** आदि। उन्होंने कुल 84 कहानियां लिखी हैं जो ***'गल्पगुच्छ'*** नाम से तीन भागों में संकलित हैं।

उनकी कहानियों में ***'काबुलीवाला'*** सबसे अधिक लोकप्रिय है। यह कहानी उनकी सर्वश्रेष्ठ कहानियों में भी गिनी जाती है। यह कहानी किसी भी प्रकार दुखांत नहीं है। इसमें पिता पुत्री के स्नेह का सजीव चित्रण मिलता है। रहमत काबुली का मिनी के प्रति वात्सल्य उभर कर सामने आया है। कहानी के अंत में यह भी स्पष्ट होता है कि रहमत की भी एक पुत्री है जिसकी छाया वह मिनी में ढूंढ़ता रहा है। इस बात को जानकर मिनी के पिता का मन सहानुभूति से भर उठता है और वे रहमत को घर जाने का किराया देते हैं।

काबुलीवाला

मेरी पांच वर्ष की छोटी लड़की मिनी से घड़ी-भर भी बात बिना किए नहीं रहा जाता। संसार में जन्म लेने के बाद भाषा सीखने में उसने सिर्फ एक ही साल लगाया होगा। उसके बाद से, जितनी देर तक वह जागती रहती है, उस समय का एक क्षण भी वह मौन में नष्ट नहीं करती। उसकी मां अक्सर डांटकर उसका मुंह बंद कर देती है, पर मुझसे ऐसा नहीं होता। मिनी का चुप रहना मुझे ऐसा अस्वाभाविक लगता है कि मुझसे वह ज्यादा देर तक सहा नहीं जाता। यही वजह है कि मेरे साथ उसकी बातचीत कुछ ज्यादा उत्साह के साथ होती है।

सवेरे मैंने अपने उपन्यास के सत्रहवें परिच्छेद में हाथ लगाया ही था कि इतने में मिनी ने आकर कहना शुरू कर दिया—"बापूजी, रामदयाल दरबान, 'काक' को 'कौआ' कहता था, वो कुछ जानता नहीं न बापूजी?"

दुनिया की भाषाओं की विभिन्नता के विषय में मेरे कुछ कहने से पहले ही उसने दूसरा प्रसंग छेड़ दिया—"देखो बापूजी, भोला कहता था, आकाश में हाथी सूंड से पानी फेंकता है, इसी से बरसा होती है! अच्छा बापूजी, भोला झूठ-मूठ को बकता बहुत है न! खाली बकबक किया करता है, रात-दिन करता है।" मैंने कहा—"मिनी तू जा, भोला के साथ खेल जाकर। मुझे अभी काम है, अच्छा!"

तब उसने मेरी टेबिल के बगल में पैरों के पास बैठकर अपने दोनों घुटनों और हाथों को हिला-हिलाकर बड़ी जल्दी-जल्दी मुंह चलाकर 'अटकन-बटकन दही चटाके' खेल शुरू कर दिया।

मेरा घर सड़क के किनारे पर था। सहसा मिनी 'अटकन-बटकन' खेल छोड़कर खिड़की के पास दौड़ी गई, और बड़ी जोर से चिल्लाने लगी, "काबुलीवाला, ओ काबुलीवाला!"

मैले-कुचैले ढीले कपड़े पहने, सिर पर साफ़ा बांधे, कन्धे पर मेवों की झोली लटकाए, हाथ में दो-चार अंगूर की पिटारियां लिये एक लम्बा-सा काबुली धीमी चाल से सड़क पर जा रहा था। उसे देखकर मेरी कन्या के मन में कैसा भावोदय हुआ, यह बताना कठिन है। उसने ज़ोरों से उसे

पुकारना शुरू कर दिया। मैंने सोचा, अभी झोले कन्धे में डाले एक आफत आ खड़ी होगी और मेरा सत्रहवां परिच्छेद आज पूरा होने से रह जाएगा।

लेकिन मिनी के चिल्लाने पर ज्योंही काबुली ने हंसते हुए उसकी तरफ मुंह फेरा और मेरे मकान की तरफ आने लगा, त्योंही वह जान लेकर भीतर की ओर भाग गई। फिर उसका पता ही नहीं लगा कि कहां गायब हो गई। उसके मन में एक अन्धविश्वास-सा बैठ गया था कि उस झोली के अन्दर तलाश करने पर उस जैसी और भी दो-चार जीती-जागती लड़कियां निकल सकती हैं।

काबुली ने आकर मुस्कराते हुए मुझे सलाम किया और खड़ा हो गया। यद्यपि लेखन की व्यस्तता में उसका आना मुझे अच्छा नहीं लगा, फिर भी घर में बुलाकर इससे कुछ न खरीदना अच्छा न होगा, यह सोच उससे कुछ सौदा खरीदा गया। उसके बाद इससे इधर-उधर की बातें करने लगा। अब्दुर्रहमान, रूस, अंग्रेज, सीमान्त रक्षा इत्यादि विषयों में गप-शप होने लगी।

अन्त में, उठकर जाते समय उसने अपनी खिचड़ी भाषा में पूछा—"बाबू शाब, तुम्हारा लड़की कहां गई?"

मैंने मिनी के मन से फजूल का डर दूर करने के इरादे से उसे भीतर से बुलवा लिया। वह मुझसे बिल्कुल सटकर काबुली के मुंह और झोली की तरफ संदिग्ध दृष्टि से देखती हुई खड़ी रही। काबुली ने झोली में से किशमिश और खुमानी निकालकर देना चाहा पर उसने कुछ भी न लिया; और दूने सन्देह के साथ मेरे घुटनों से चिपक गई। पहला परिचय इस तरह हुआ।

[2]

कुछ दिन बाद एक दिन सवेरे किसी जरूरी काम से मैं बाहर जा रहा था। देखा तो मेरी दुहिता दरवाजे के पास बैंच पर बैठी हुई काबुली से खूब बातें कर रही है; और काबुली उसके पैरों के पास बैठा-बैठा मुस्कराता हुआ सब ध्यान से सुन रहा है और बीच-बीच में प्रसंगानुसार अपना मतामत भी खिचड़ी भाषा में व्यक्त करता जाता है। मिनी को अपने पांच साल के जीवन की जानकारी में 'बापूजी' के सिवा ऐसा धीरज वाला श्रोता शायद ही कभी मिला होगा। देखा तो उसका छोटा-सा आंचल बादाम-किशमिश से भरा हुआ है। मैंने काबुली से कहा—"उसे यह सब क्यों दे दिया? अब मत देना।" कहकर जेब में से एक अठन्नी निकालकर उसे दे दी। उसने बिना किसी संकोच के अठन्नी लेकर अपनी झोली में डाल ली।

घर लौटकर देखता हूं तो उस अठन्नी ने बड़ा भारी उपद्रव खड़ा कर दिया है।

मिनी की मां एक सफेद चमकीला गोलाकार पदार्थ हाथ में लिये डपटकर मिनी से पूछ रही है—"तूने यह अठन्नी पायी कहां से?"

मिनी ने कहा—"काबुलीवाले ने दी है।"

"काबुलीवाले से तैने अठन्नी ली कैसे, बता?"

मिनी ने रोने की तैयारी करके कहा—"मैंने मांगी नहीं, उसने अपने-आप दी है।"

मैंने आकर मिनी की उस आसन्न विपत्ति से रक्षा की, और उसे बाहर ले आया।

मालूम हुआ कि इस बीच में काबुली रोज आया है और पिस्ता-बादाम की रिश्वत दे-देकर मिनी के छोटे-से हृदय पर उसने काफी अधिकार जमा लिया है।

देखा कि इन दोनों मित्रों में कुछ बंधी-बंधाई बातें और हंसी प्रचलित है। जैसे, रहमत को देखते ही मेरी लड़की हंसती हुई पूछेगी, "काबुलीवाला! ओ काबुलीवाला! तुम्हारी झोली के भीतर क्या है?"

रहमत एक अनावश्यक चन्द्रबिन्दु जोड़कर हंसता हुआ उत्तर देता—'हाथी!' उसके परिहास का मर्म अत्यन्त सूक्ष्म हो, ऐसा तो नहीं कहा जा सकता; फिर भी इससे दोनों को जरा विशेष कौतुक मालूम होता, और शरद् ऋतु के प्रभात में एक सयाने और एक बच्चे की सहज हंसी देखकर मुझे भी बड़ा अच्छा लगता।

उनमें और भी एक-आध बात प्रचलित थी। रहमत मिनी से कहता—'लल्ली, तुम ससुराल कभी नहीं जाना, अच्छा!'

हमारे यहां लड़कियां जन्म से ही 'ससुराल' शब्द से परिचित रहती हैं, किन्तु हम लोग जरा कुछ नये जमाने के होने के कारण जरा-सी बच्ची को ससुराल के सम्बन्ध में विशेष ज्ञानी नहीं बना सके थे, इसलिए रहमत का अनुरोध वह साफ-साफ नहीं समझ पाती थी; किन्तु फिर भी किसी बात का जवाब बिना दिए चुप रहना उसके स्वभाव के विरुद्ध था। उल्टे वह रहमत से ही पूछती, "तुम ससुराल जाओगे?"

रहमत काल्पनिक ससुर के लिए अपना प्रकाण्ड मोटा घूंसा तानकर कहता—"हम ससुर को मारेगा।"

सुनकर मिनी 'ससुर' नामक किसी अपरिचित जीव की दुरवस्था की कल्पना करके खूब हंसती।

[3]

मिनी की मां स्वभाव की बड़ी वहमी है। रास्ते में कोई शोर-गुल हुआ नहीं कि उसने समझ लिया कि दुनिया-भर के सारे मतवाले शराबी हमारे ही मकान की तरफ दौड़े आ रहे हैं। उसकी समझ में यह दुनिया इस छोर से लेकर उस छोर तक चोरों, डकैतों, मतवाले शराबियों, सांपों, बाघों,

मलेरिया, तिलचिट्टों और गोरों से भरी पड़ी है। इतने दिन से (बहुत ज्यादा दिन नहीं हुए) इस दुनिया में रहते हुए भी उसके मन की यह विभीषिका दूर नहीं हुई।

रहमत काबुली की तरफ से वह पूरी तरह निश्चिन्त नहीं थी। उस पर विशेष दृष्टि रखने के लिए मुझसे वह बार-बार अनुरोध करती रहती। जब मैंने उसका सन्देह हंसी में उड़ा देना चाहा, तो वह मुझसे एक साथ कई सवाल कर बैठती—"क्या कभी किसी का लड़का चुराया नहीं गया? क्या काबुल में गुलाम नहीं बेचे जाते? एक लम्बे-तगड़े मोटे काबुली के लिए एक छोटे-से बच्चे को चुरा ले जाना क्या बिल्कुल असम्भव है?"—इत्यादि इत्यादि।

मुझे मानना पड़ता है कि यह बात बिल्कुल असम्भव हो, सो बात नहीं; पर विश्वास योग्य नहीं। विश्वास करने की शक्ति सबमें समान नहीं होती, इसलिए मेरी स्त्री के मन में डर रह ही गया है; लेकिन सिर्फ इसलिए बिना किसी दोष के रहमत को अपने मकान में आने से मना न कर सका।

हर साल माघ महीने के लगभग रहमत देश चला जाता है। इस समय वह अपने ग्राहकों से रुपया वसूल करने के काम में बड़ा उद्विग्न रहता है। उसे घर-घर घूमना पड़ता है, मगर फिर भी वह मिनी से एक बार मिल ही जाता है। देखने में तो ठीक ऐसा लगता है कि दोनों में मानो कोई षड्यंत्र चल रहा हो। जिस दिन वह सवेरे नहीं आ पाता, उस दिन देखूं तो शाम को हाजिर है। अंधेरे में घर के कोने में उस ढीले-ढाले जामा-पायजामा पहने झोला-झोली वाले लम्बे-तगड़े आदमी को देखकर सचमुच ही मन में सहसा एक आशंका-सी पैदा हो जाती है।

परन्तु, जब देखता हूं कि मिनी "काबुलीवाला, ओ काबुलीवाला!" पुकारती हुई हंसती-हंसती दौड़ी आती है और दो जुदा-जुदा उमर के असमान मित्रों में वही पुराना सरल परिहास चलने लगता है, तब मेरा संपूर्ण हृदय प्रसन्न हो उठता है।

एक दिन सवेरे मैं अपने छोटे कमरे में बैठा हुआ अपनी नई पुस्तक का प्रूफ देख रहा था। जाड़ा विदा होने से पहले आज दो तीन रोज से खूब जोरों से पड़ रहा है। जहां देखो वहां जाड़े की ही चर्चा है। ऐसे जाड़े पाले में, खिड़की में से सवेरे की धूप टेबिल के नीचे मेरे पैरों पर आ पड़ी तो उसकी गरमी मुझे बड़ी अच्छी मालूम देने लगी। करीब आठ बजे होंगे। इसी समय सड़क पर एक बड़ा भारी हल्ला-सा सुनाई दिया।

देखूं तो अपने रहमत को दो सिपाही बांधे लिये जा रहे हैं। उसके पीछे बहुत-से कुतूहल लड़कों का झुण्ड चला आ रहा है। रहमत के कुर्ते पर खून के दाग हैं और एक सिपाही के हाथ में खून से सना हुआ छुरा! मैंने दरवाजे से बाहर निकलकर सिपाही को रोक लिया, पूछा—"क्या बात है?"

कुछ सिपाही से और कुछ रहमत के मुंह से सुना कि हमारे पड़ौस में रहने वाले एक आदमी ने रहमत से एक रामपुरी चद्दर खरीदी थी। उसके कुछ रुपये उसकी तरफ बाकी थे, जिन्हें वह देने से नट गया। बस, इसी पर दोनों में बात बढ़ गई और रहमत ने निकालकर छुरा घोंप दिया।

रहमत उस झूठे, बेईमान आदमी के लिए तरह-तरह की अश्राव्य गालियां सुना रहा था। इतने में "काबुलीवाला, ओ काबुलीवाला!" पुकारती हुई मिनी घर से निकल आई।

रहमत का चेहरा क्षण-भर में कौतुक-हास्य प्रफुल्ल हो उठा! उसके कंधे पर आज झोली नहीं थी, इसीलिए झोली के बारे में दोनों मित्रों की अभ्यस्त आलोचना न चल सकी। मिनी ने आने के साथ ही उससे पूछा, "तुम ससुराल जाओगे?"

रहमत ने हंसकर कहा—"हां, वहीं तो जा रहा हूं।"

रहमत ताड़ गया कि उसका यह उत्तर मिनी के चेहरे पर हंसी न ला सका, और तब उसने हाथ दिखाकर कहा—"ससुर को मारता, पर क्या करूं, हाथ बंधे हुए हैं।"

छुरा चलाने के कसूर में रहमत को कई साल की सज़ा हो गई।

[4]

काबुली का ख्याल धीरे-धीरे मन से बिल्कुल उतर गया। हम लोग जब घर में बैठकर हमेशा के अभ्यास के अनुसार नित्य का काम-धन्धा करते हुए आराम से दिन बिता रहे थे, तब एक स्वाधीन पर्वतचारी पुरुष जेल की दीवारों के अन्दर कैसे साल पर साल बिता रहा होगा, यह बात हमारे मन में कभी उदित नहीं हुई।

और चंचल-हृदय मिनी का आचरण तो और भी लज्जाजनक था, यह बात उसके बाप को माननी ही पड़ेगी। उसने सहज ही अपने पुराने मित्र को भूलकर पहले तो नबी सईस के साथ मित्रता जोड़ी। फिर क्रमशः जैसे-जैसे उसकी उमर बढ़ने लगी, वैसे-वैसे सखा के बदले एक के बाद एक उसकी सखियां जुटने लगीं। और तो क्या, अब वह अपने बापूजी के लिखने के कमरे में भी नहीं दिखाई देती। मेरा तो एक तरह से उसके साथ सम्बन्ध ही टूट गया।

कितने ही साल बीत गए। सालों बाद आज फिर एक शरद-ऋतु आई है। मिनी की सगाई पक्की हो गई है। पूजा की छुट्टियों में ही उसका ब्याह हो जाएगा। कैलासवासिनी के साथ-साथ अबकी बार हमारे घर की आनन्दमयी मिनी भी मां-बाप के घर में अंधेरा करके सास-ससुर के घर चली जाएगी।

प्रभात का सूर्य बड़ी सुन्दरता से उदय हुआ। वर्षा के बाद शरद-ऋतु की यह नई धुली हुई धूप मानो सुहागे में गले निर्मल सोने की तरह रंग दे

रही है। कलकत्ता की गलियों के भीतर परस्पर सटे हुए पुराने ईंटझर गन्दे मकानों के ऊपर भी इस धूप की आभा ने एक तरह का अनुपम लावण्य फैला दिया है।

हमारे घर पर आज मुंह अंधेरे से ही शहनाई बज रही है। मुझे ऐसा लग रहा है जैसे वह मेरे कलेजे की पसलियों में से रो-रोकर बज रही हो। उसकी करुणा भैरवी रागिनी मानो मेरी आसन्न-विच्छेद व्यथा को शरद्-ऋतु की धूप के साथ सम्पूर्ण विश्व-जगत् में व्याप्त कर देती है। मेरी मिनी का आज ब्याह है।

सवेरे से बड़ा भारी झमेला है। हर वक्त लोगों का आना-जाना जारी है। आंगन में बांस बांधकर मण्डप छाया जा रहा है। हर एक कमरे में और बरामदे में झाड़ लटकाए जा रहे हैं और उनकी टन-टन की आवाज मेरे कमरे में आ रही है। 'चल रे', जल्दी कर', 'इधर आ' की तो कोई शुमार ही नहीं।

मैं अपने लिखने-पढ़ने के कमरे में बैठा हुआ हिसाब लिख रहा था। इतने में रहमत आया और सलाम करके खड़ा हो गया।

पहले तो मैं उसे पहचान ही न सका। उसके पास न तो झोली थी, न वैसे लम्बे-लम्बे बाल थे, और न चेहरे पर पहले जैसा तेज ही था। अन्त में उसकी मुस्कराहट देखकर पहचान सका कि वह रहमत है।

मैंने पूछा—"क्यों रहमत! कब आए?"

उसने कहा—"कल शाम को जेल से छूटा हूं।"

सुनते ही उसके शब्द मेरे कानों में खट-से बज उठे। किसी खूनी को मैंने कभी आंखों से नहीं देखा, उसे देखकर मेरा सारा मन एकाएक सिकुड़-सा गया। मेरी यही इच्छा होने लगी कि आज के इस शुभ दिन में यह आदमी यहां से चला जाए तो अच्छा हो।

मैंने उससे कहा—"आज हमारे घर में एक जरूरी काम है सो आज मैं उसमें लगा हुआ हूं। आज तुम जाओ, फिर आना।"

मेरी बात सुनकर वह उसी समय जाने को तैयार हो गया। पर दरवाजे के पास जाकर कुछ इधर-उधर करके बोला—"बच्ची को जरा देख लेता ···"

शायद उसे विश्वास था कि मिनी अभी तक वैसी ही बच्ची बनी है। उसने सोचा कि मिनी अब भी पहले की तरह 'काबुलीवाला, ओ काबुलीवाला!' चिल्लाती हुई दौड़ी चली आएगी। उन दोनों के उस पुराने कौतुक-जन्य हास्यालाप में किसी तरह की रुकावट न होगी। यहां तक कि पहले की मित्रता की याद करके एक पेटी अंगूर और कागज के ठोंगे में थोड़ी-सी किशमिश और बादाम, शायद अपने देश के किसी आदमी से, मांग-मूंगकर लाया था। उसकी वह पहले की अपनी झोली उसके पास नहीं थी।

मैंने कहा—"आज घर में बहुत काम है। आज किसी से मुलाकात न हो सकेगी।"

मेरा जवाब सुनकर वह कुछ उदास-सा हो गया। खामोशी के साथ उसने एक बार मेरे मुंह की ओर स्थिर दृष्टि से देखा; फिर "सलाम बाबू साहब" कहकर दरवाजे के बाहर निकल गया।

मेरे हृदय में न जाने कैसी एक वेदना-सी उठी। मैं सोच ही रहा था कि उसे बुलालूं; इतने में देखा तो वह खुद ही आ रहा है।

पास आकर बोला—"ये अंगूर और किशमिश-बादाम बच्ची के लिए लाया था, उसको दे दीजिएगा।"

मैंने उसके हाथ से सामान लेकर उसे पैसे देने चाहे पर उसने मेरा हाथ थाम लिया, कहने लगा—"आपकी बहुत मेहरबानी है, बाबू साहब! हमेशा याद रहेगी; पैसा रहने दीजिए।" जरा ठहरकर फिर बोला—"बाबू साब, आपकी जैसी मेरी भी देश में एक लड़की है। मैं उसकी याद करके आपकी बच्ची के लिए थोड़ी-सी मेवा हाथ में ले आया करता हूं। मैं तो यहां सौदा बेचने नहीं आता।"

कहते हुए उसने अपने ढीले-ढाले कुरते के अन्दर हाथ डालकर छाती के पास से एक मैला-कुचैला कागज का टुकड़ा निकाला और बड़े जतन से उसकी तह खोलकर दोनों हाथों से उसे फैलाकर मेरी टेबिल पर रख दिया।

देखा कि कागज पर एक नन्हें-से हाथ की छोटी-सी छाप है। फोटोग्राफ नहीं, तैलचित्र नहीं, हाथ में थोड़ी-सी कालिख लगाकर कागज के ऊपर उसी का निशान ले लिया गया है। अपनी लड़की की इस याददाश्त को छाती से लगाकर रहमत हर साल कलकत्ता के गली-कूंचों में मेवा बेचने आता है और तब यह कालिख-चित्र, मानो उसकी बच्ची के हाथ का सुकोमल स्पर्श, उसके बिछुड़े हुए विशाल वक्षःस्थल में सुधा उड़ेलता रहता है।

देखकर मेरी आंखें भर आईं, और फिर इस बात को मैं बिल्कुल ही भूल गया कि वह एक काबुली मेवावाला है और मैं एक उच्च वंश का हूं। तब मैं महसूस करने लगा कि जो वह है, वही मैं हूं। वह भी बाप है, मैं भी बाप हूं। उसकी पर्वतवासिनी छोटी-सी पार्वती के हाथ की निशानी ने मेरी ही मिनी की याद दिला दी। मैंने उसी वक्त मिनी को बाहर बुलवाया। हालांकि इस पर भीतर बहुत-कुछ आपत्ति की गई, पर मैंने उस पर कुछ ध्यान नहीं दिया। ब्याह की पूरी पोशाक और जेवर-गहने पहने हुए बेचारी वधू-वेशिनी मिनी मारे शर्म के सिकुड़ी हुई-सी मेरे पास आकर खड़ी हो गई।

उसे देखकर रहमत काबुली पहले तो सकपका गया; पहले जैसी

बातचीत करते उससे न बना। बाद में हंसता हुआ बोला—"लल्ली, सास के घर जा रही है क्या?"

मिनी अब सास के मायने समझने लगी है; लिहाजा अब उससे पहले की तरह जवाब देते न बना। रहमत की बात सुनकर मारे शर्म से उसका मुंह लाल सुर्ख हो उठा। उसने मुंह फेर लिया। मुझे उस दिन की बात याद आ गई जबकि काबुली के साथ मिनी का प्रथम परिचय हुआ था। मन में एक व्यथा-सी जाग उठी।

मिनी के चले जाने पर एक गहरी उसांस भरकर रहमत जमीन पर बैठ गया। शायद उसकी समझ में यह बात एकाएक स्पष्ट हो उठी कि उसकी लड़की भी इतने दिनों में बड़ी हो गई होगी और उसके साथ भी उसे अब फिर नई पहचान करनी पड़ेगी, शायद उसे अब वह ठीक पहले की-सी वैसी-की वैसी न पाएगा। इन आठ बरसों में उसका क्या हुआ होगा, कौन जाने?

सवेरे के वक्त शरद् की स्निग्ध-सूर्य-किरणों में शहनाई बजने लगी; और रहमत कलकत्ता की एक गली के भीतर बैठा हुआ अफगानिस्तान के एक मरु-पर्वत का दृश्य देखने लगा।

मैंने कुछ रुपये निकालकर उसके हाथ में दिए; और कहा—"रहमत! तुम आज अपने देश चले जाओ, अपनी लड़की के पास। तुम दोनों के मिलन-सुख से मेरी मिनी सुख पाएगी।"

रहमत को रुपये देने के बाद ब्याह के हिसाब में से मुझे उत्सव-समारोह के दो-एक अंग छांटकर निकाल देने पड़े। जैसी सोची थी वैसी रोशनी नहीं कर सका, अंग्रेजी बाजे भी नहीं आए, घर में औरतें बड़ी नाराजगी दिखाने लगीं, सब-कुछ हुआ, फिर भी मेरा ख्याल है कि आज एक अपूर्व मंगल-प्रकाश से हमारा वह शुभ उत्सव उज्ज्वल हो उठा।

प्रश्न अभ्यास

(1) सही उत्तर पर √ निशान लगाओ।

लेखक के साथ मिनी की बातचीत कुछ ज्यादा ही उत्साह के साथ होती है, क्योंकि—

(क) मिनी का चुप रहना लेखक ज्यादा देर बर्दाश्त नहीं कर सकता।

(ख) लेखक स्वयं बड़ा बातूनी है।

(ग) लेखक चाहता है कि मिनी बात करना सीख जाए इसलिए वह उसे खूब बोलने देता है, उसे प्रोत्साहित करता है।

(घ) बाप-बेटी के बीच बड़ा स्नेह है, इसलिए मिनी का बोलना पिता को अच्छा लगता है।

(2) प्रारम्भ में मिनी काबुली से डरती क्यों थी?

(3) पाठ के आधार पर काबुली का शब्द चित्र खींचो। यों शुरू करो—
"मैले कुचैले ढीले ढाले कपड़े पहने ...."

(4) नीचे लिखा वाक्य पढ़कर प्रश्नों के उत्तर दो।
"घर लौटकर देखता हूं तो उस अठन्नी ने बड़ा भारी उपद्रव खड़ा कर दिया है।"

(क) अठन्नी कहां से आई? उसने कौन-सा उपद्रव खड़ा कर दिया?
(ख) मिनी की मां को रहमत से क्या आशंका थी?
(ग) रहमत को किस अपराध में सज़ा हुई? विस्तार से बताओ।

(5) जेल से वापस आकर काबुली ने जब मिनी से मिलने की इच्छा प्रकट की तो लेखक ने उसे क्यों मना कर दिया? फिर क्या सोचकर उन्होंने मिनी को बुलवाया?

(6) नीचे लिखे वाक्य को पढ़कर प्रश्नों के उत्तर दो।
"लल्ली, सास के घर जा रही है क्या?"

(क) यह किसने, किससे, कब कहा?
(ख) इस प्रश्न के उत्तर में सात साल पहले मिनी क्या कहा करती थी?
(ग) अब इस प्रश्न को सुनकर मिनी पर क्या प्रतिक्रिया हुई?
(घ) सात सालों में क्या-क्या बदल गया था?

(7) मिनी के विवाह के खर्च में से कुछ रुपए निकाल कर लेखक ने काबुली को क्यों दिए? इस कारण विवाह के खर्च में कौन-सी कटौती करनी पड़ी?

(8) मिनी के चले जाने पर रहमत एक गहरी उसांस भर कर क्यों बैठ गया? सही उत्तर पर ✓ लगाओ।

(क) अचानक उसे लगा कि उसकी अपनी लड़की भी विवाह योग्य हो गई होगी।
(ख) लड़की की शादी के मौके पर सभी का दिल भर आता है।
(ग) उसे ध्यान आया कि वह सात साल की सज़ा काट कर आया है।
(घ) उसे जेल में बिताए दिनों के कष्ट याद आ गए।

(9) "आज घर में बहुत काम है। आज किसी से मुलाकात न हो सकेगी।"

(क) ये वाक्य किसने, किससे कहे हैं? और क्यों?
(ख) आगन्तुक किससे मुलाकात करना चाहता था? क्या मुलाकात हुई?
(ग) मुलाकात से पहले आगन्तुक क्या सोच रहा था?
(घ) उस दिन लेखक के घर में क्या खास बात थी? मुलाकात के समय मिनी की क्या अवस्था थी?

सियारामशरण गुप्त

सियारामशरण गुप्त का जन्म 1895 ई. में चिरगांव, जिला झांसी (उत्तर प्रदेश) में हुआ था। ये राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त के छोटे भाई थे। इनकी शिक्षा घर पर ही हुई। घर पर ही इन्होंने कई भाषाएं सीखीं और ज्ञान अर्जित किया। जीवनभर ये बड़े भाई के अनुयायी रहे। इनके परिवार में राम भक्ति की परम्परा थी। भरत की तरह ये बड़े भाई के भक्त थे। परिवार के साहित्यिक वातावरण ने इनकी प्रतिभा का बहुमुखी विकास किया था। इनका साहित्य गुण और परिमाण दोनों ही दृष्टियों से समृद्ध है। सन् 1963 ई. में दिल्ली में इनकी मृत्यु हुई।

सियारामशरण गुप्त सफल उपन्यासकार होने के साथ-साथ उत्कृष्ट कवि भी थे। इन्होंने नाटक, कहानी और निबंध भी लिखे जिनके लिए इन्हें पर्याप्त ख्याति मिली। इनके उपन्यासों के नाम हैं— ***'गोद', 'नारी'***, और ***'अंतिम आकांक्षा'***। ***'पुण्य पर्व'*** और ***'उन्मुक्त'*** इनके लिखे नाटक हैं। इनके एकमात्र कहानी संग्रह का नाम है ***'मानुषी'***। ***'झूठ सच'*** में इनके निबंध संकलित हैं। इनकी मुख्य काव्य कृतियों के नाम हैं— ***'मौर्य विजय', 'आर्द्रा', 'पाथेय', 'मृण्मयी', 'बापू', 'उन्मुक्त', 'आत्मोत्सर्ग'*** और ***'नकुल'***।

महात्मा गांधी के व्यक्तित्व और दर्शन का गुप्त जी पर गहरा प्रभाव था। गांधीवादी विचारधारा के ये अन्यतम कलाकार हैं। इनकी भाषा सरल और जीवंत है।

'काकी' कहानी सियारामशरण गुप्त की प्रतिनिधि रचना है। इसे अत्यन्त लोकप्रियता मिली है। छोटी-सी यह कहानी अपनी मार्मिकता की छाप छोड़ जाती है। बच्चे का भोलापन जब उसके पिता के सम्मुख प्रकट होता है तो वह पिता के साथ-साथ पाठक को भी भाव-विह्वल कर जाता है। सरल सहज भाषा शैली में लिखी गई यह कहानी हिन्दी की अमर रचना बन चुकी है। पारिवारिक यथार्थ के साथ-साथ मातृ स्नेह की ऐसी अभिव्यक्ति अन्यत्र दुर्लभ है।

काकी

उस दिन बड़े सबेरे जब श्यामू की नींद खुली तब उसने देखा—घर-भर में कुहराम मचा हुआ है। उसकी काकी—उमा—एक कम्बल पर नीचे से ऊपर तक कपड़ा ओढ़े भूमिशयन कर रही है, और घर के सब लोग उसे घेरकर बड़े करुण स्वर में विलाप कर रहे हैं।

लोग जब उमा को श्मशान ले जाने के लिए उठाने लगे तब श्यामू ने बड़ा उपद्रव मचाया। लोगों के हाथों से छूटकर वह उमा के ऊपर जा गिरा। बोला—''काकी तो सो रही हैं। उन्हें इस तरह उठाकर कहां लिये जा रहे हो? मैं न ले जाने दूंगा।'' लोगों ने बड़ी कठिनता से उसे हटाया। काकी के अग्नि-संस्कार में भी वह न जा सका। एक दासी राम-राम करके उसे घर पर ही संभाले रही।

यद्यपि बुद्धिमान गुरुजनों ने उसे विश्वास दिलाया कि उसकी काकी उसके मामा के यहां गई है, परन्तु असत्य के आवरण में सत्य बहुत समय तक छिपा न रह सका। आस-पास के अन्य अबोध बालकों के मुंह से ही वह प्रकट हो गया। यह बात उससे छिपी न रह सकी कि काकी और कहीं नहीं, ऊपर राम के यहां गई है। काकी के लिए कई दिन लगातार रोते-रोते उसका रुदन तो क्रमशः शान्त हो गया, पर शोक शान्त न हो सका। जिस तरह वर्षा के अनन्तर एक ही दो दिन में पृथ्वी के ऊपर का पानी अगोचर हो जाता है, परन्तु बहुत भीतर तक उसकी आर्द्रता बहुत दिन तक बनी रहती है, उसी प्रकार वह शोक उसके अन्तःस्थल में जाकर बस गया। वह प्रायः अकेला बैठा-बैठा शून्य मन से आकाश की ओर ताका करता।

एक दिन उसने ऊपर एक पतंग उड़ती देखी। न जाने क्या सोचकर उसका हृदय एकदम खिल उठा। विश्वेश्वर के पास जाकर बोला—''काका, मुझे एक पतंग मंगा दो।''

पत्नी की मृत्यु के बाद से विश्वेश्वर बहुत अन्यमनस्क-से रहते थे। ''अच्छा मंगा दूंगा।''—कहकर वे उदास भाव से बाहर चले गए।

श्यामू पतंग के लिए बहुत उत्कण्ठित हो उठा। वह अपनी इच्छा किसी तरह न रोक सका। एक जगह खूंटी पर विश्वेश्वर का कोट टंगा हुआ था। इधर-उधर देखकर उसने उसके पास एक स्टूल सरकाकर रखा और

ऊपर चढ़कर कोट की जेबें टटोलीं। उनमें से एक चवन्नी का आविष्कार करके वह तुरन्त वहां से भाग गया।

सुखिया दासी का लड़का—भोला—श्यामू का समवयस्क साथी था। श्यामू ने उसे चवन्नी देकर कहा—"अपनी जीजी से कहकर गुपचुप एक पतंग और डोर मंगा दो। देखो, खूब अकेले में लाना, कोई जान न पाए।"

पतंग आई। एक अंधेरे घर में उसमें डोर बांधी जाने लगी। श्यामू ने धीरे से कहा—"भोला, किसी से न कहे तो एक बात कहूं।"

भोला ने सिर हिलाकर कहा—"नहीं, किसी से न कहूंगा।"

श्यामू ने रहस्य खोला। कहा—"मैं यह पतंग ऊपर राम के घर भेजूंगा। इसे पकड़कर काकी नीचे उतरेगी। लिखना नहीं जानता। नहीं तो इस पर उसका नाम लिख देता।"

भोला श्यामू से अधिक समझदार था। उसने कहा—"तुमने बात तो बड़ी अच्छी सोची, परन्तु एक कठिनाई है। यह डोर पतली है। इसे पकड़कर काकी उतर नहीं सकती। इसके टूट जाने का डर है; पतंग में मोटी रस्सी हो तब तो ठीक हो जाए।"

श्यामू गम्भीर हो गया। मतलब—यह बात लाख रुपये की सुझाई गई है। परन्तु कठिनाई यह थी कि मोटी रस्सी कैसे मंगाई जाए। पास में दाम हैं नहीं और घर के जो आदमी उसकी काकी को बिना दया-माया के जला आए हैं, वे उसे इस काम के लिए कुछ नहीं देंगे। उस दिन श्यामू को चिन्ता के मारे बड़ी रात तक नींद नहीं आई।

पहले दिन की ही तरकीब से दूसरे दिन फिर उसने विश्वेश्वर के कोट से एक रुपया निकाला। ले-जाकर भोला को दिया और बोला—"देख भोला, किसी को मालूम न होने पावे। अच्छी-अच्छी दो रस्सियां मंगा दे। एक रस्सी ओछी पड़ेगी। जवाहिर भैया से मैं कागज पर 'काकी' लिखवा रखूंगा। नाम की चिट रहेगी तो पतंग ठीक उन्हीं के पास पहुंच जाएगी।"

दो घण्टे बाद प्रफुल्ल मन से श्यामू और भोला अंधेरी कोठरी में बैठे-बैठे पतंग की रस्सी बांध रहे थे। अकस्मात् शुभ कार्य में विघ्न की तरह उग्र मूर्ति धारण किए हुए विश्वेश्वर वहां आ घुसे। भोला और श्यामू को धमकाकर बोले—"तुमने हमारे कोट से रुपया निकाला है?"

भोला सकपकाकर एक ही डांट में मुखबिर बन गया। बोला—"श्यामू भैया ने रस्सी और पतंग मंगाने के लिए निकाला था।"

विश्वेश्वर ने श्यामू को दो तमाचे जड़कर कहा—"चोरी सीखकर जेल जाएगा? अच्छा, तुम्हें आज अच्छी तरह समझाता हूं।" कहकर दो-चार थप्पड़ और जड़कर पतंग फाड़ डाली। अब रस्सियों की ओर देखकर उन्होंने पूछा—"ये किसने मंगाईं?"

भोला ने कहा—"इन्होंने मंगाई थीं। कहते थे, इससे पतंग तानकर काकी को राम के यहां से नीचे उतारेंगे।"

विश्वेश्वर एक क्षण के लिए हतबुद्धि होकर खड़े रह गए। उन्होंने फटी हुई पतंग उठाकर देखी। उस पर एक कागज चिपका था, जिस पर लिखा हुआ था—'काकी!'

प्रश्न अभ्यास

(1) प्रातःकाल सोकर उठते ही श्यामू ने क्या देखा?

(2) श्यामू अपनी मां को उठाकर क्यों नहीं ले जाने दे रहा था?

(3) श्यामू आकाश की ओर क्यों देखता रहता था? क्योंकि

(क) वह आकाश में पतंगों का उड़ना देखता रहता था।

(ख) उसे उम्मीद थी कि ऊपर राम के यहां गई हुई उसकी मां कहीं दिख जाएगी।

(ग) उसे बादल अच्छे लगते थे।

(घ) उसे कोई काम-काज नहीं था इसलिए ऊपर देख-देख कर वह अपना मन बहलाया करता था।

ऊपर के उत्तरों में जो सही लगे, उस पर √ लगाओ।

(4) विश्वेश्वर ने श्यामू को क्यों मारा?

(5) नीचे लिखे वाक्य का भाव स्पष्ट करो—

"रोते-रोते उसका रुदन तो क्रमशः शांत हो गया, पर शोक शांत न हो सका।"

(6) नीचे लिखे वाक्य को पढ़कर प्रश्नों के उत्तर दो।

"अकस्मात् शुभ कार्य में विघ्न की तरह उग्र मूर्ति धारण किए हुए विश्वेश्वर वहां आ घुसे।"

(क) विश्वेश्वर कौन थे? वे कहां और कब आ घुसे?

(ख) उस समय श्यामू और भोला क्या कर रहे थे? उन पर विश्वेश्वर क्यों नाराज़ हुए?

(ग) विश्वेश्वर को भोला ने क्या-क्या बताया?

(घ) भोला के अनुसार रस्सियां क्यों मंगाई गईं थीं?

(ङ) भोला का जवाब सुनकर विश्वेश्वर की क्या हालत हुई?

(7) इस कहानी का केन्द्रीय भाव क्या है? नीचे लिखे उत्तरों में से सही उत्तर पर √ लगाओ।

(क) छोटे बच्चे मूर्ख होते हैं।

(ख) बच्चे अपनेप्रियजनों को बहुत प्यार करते हैं।

(ग) छोटे बच्चों की चोरी पकड़ने पर उन्हें दण्ड देना चाहिए।

(घ) बड़ों को चाहिए कि वे बच्चों को कभी न मारें।

(8) नीचे लिखे वाक्य को पढ़कर प्रश्नों के उत्तर दो।

"देख भोला, किसी को मालूम न होने पावे।"

(क) यह वाक्य किसने, किससे, कब कहा?

(ख) वह कौन-सी बात थी जिसके लिए कहा जा रहा है कि किसी को मालूम न होने पावे?

(ग) भोला किसका लड़का था? उसने यह बात विश्वेश्वर को क्यों और कब बता दी?

(घ) क्या काकी को बच्चे ऊपर से उतार पाए?

यशपाल

यशपाल का जन्म सन् 1903 में हिमाचल प्रदेश के कांगड़ा जिले में हुआ था। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा गांव में ही हुई फिर गुरुकुल में पढ़ने लगे। लाहौर के नेशनल कालेज से इन्होंने बी. ए. किया। लाहौर में ही इनका परिचय दो प्रमुख क्रांतिकारियों—सरदार भगतसिंह और सुखदेव से हो गया, परिणामस्वरूप ये स्वयं भी क्रांतिकारी बन गए और राजनीति में सक्रिय भाग लेने लगे। सशस्त्र क्रांति के राजद्रोह में अंग्रेज सरकार ने इन्हें छह वर्षों के लिए कारागार में डाल दिया। जेल से बाहर आकर इन्होंने ***'विप्लव'*** पत्र निकाला और राजनीति तथा साहित्य की सेवा में जुट गए। इनकी मृत्यु दिसंबर, 1976 में लखनऊ में हुई।

यशपाल ने जेल में रहते हुए कहानी लिखना प्रारंभ किया। उन दिनों लिखी कहानियों का प्रथम संग्रह ***'पिंजरे की उड़ान'*** नाम से प्रकशित हुआ। इनके प्रमुख कहानी-संग्रह हैं—***'अभिशप्त', 'वो दुनिया', 'ज्ञानदान', 'तर्क का तूफान', 'भस्मावृत्त चिनगारी', 'फूलो का कुरता', 'उत्तमी की मां', 'ओ भैरवी'*** तथा ***'सच बोलने की भूल'।*** कहानियों के अलावा इन्होंने उपन्यास, राजनीतिक निबंध, यात्रा-विवरण, नाटक, हास्य व्यंग्य और संस्मरण भी लिखे हैं। इनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं—***'झूठा सच', 'दिव्या', 'दादा कामरेड', 'देशद्रोही', 'मनुष्य के रूप'*** और ***'पक्का कदम'।***

यशपाल के कथा-साहित्य में आधुनिक जीवन की विडंबनाओं के दर्शन होते हैं। इन्होंने सामाजिक कुरीतियों की कटु आलोचना की है। मार्क्सवादी चिंतन की ओर झुकाव होने के कारण प्रगतिशील साहित्य के ये प्रतिनिधि रचनाकार हैं। आर्थिक विषमता को उजागर करने वाली कहानियों में इन्होंने समकालीन समाज का यथार्थ चित्रण किया है। इनकी रचनाएं मानव को संघर्ष करने की प्रेरणा देती हैं।

'परदा' कहानी यशपाल की भाषा शैली का प्रतिनिधित्व करती है। इसमें मुस्लिम परिवार का परिवेश पूर्णतः जीवंत हो उठा है। इसीलिए इस कहानी की भाषा में उर्दू का स्पष्ट प्रभाव दिखता है। मुस्लिम घरों में पाए जाने वाले परदे की बात तो इस कहानी में है ही, साथ ही प्रतीक रूप में उस परदे की ओर भी संकेत है जो निरंतर ढह रहे परिवार की आबरू को ढके हुए है। आबरू के मिथ्या भ्रम को परदा छिपाए हुए है। और जब वह परदा हट जाता है तो कटु यथार्थ नग्न रूप में सामने आ खड़ा होता है।

परदा

चौधरी पीरबख्श के दादा चुंगी के महकमे में दरोगा थे। आमदनी अच्छी थी। एक छोटा पर पक्का मकान भी उन्होंने बनवा लिया था। लड़कों को पूरी तालीम दी। दोनों लड़के एंट्रेंस पास कर रेलवाई में और डाकखाने में बाबू हो गए। चौधरी साहब की जिन्दगी में लड़कों के ब्याह और बाल-बच्चे भी हुए, लेकिन ओहदे में खास तरक्की न हुई। वही तीस और चालीस रुपये माहवार का दर्जा रहा।

अपने जमाने की याद कर चौधरी साहब कहते, "वह भी क्या वक्त थे। लोग मिडिल पास कर डिप्टी-कलट्टरी करते थे और आजकल की तालीम है कि एंट्रेंस तक अंगरेजी पढ़कर लड़के तीस-चालीस से आगे नहीं बढ़ पाते।" बेटों को ऊंचे ओहदे पर देखने का अरमान लिए ही उन्होंने आंखें मूंद लीं।

चौधरी खानदान अपने मकान को हवेली पुकारता था। नाम बड़ा दे देने पर भी जगह तंग ही रही। दरोगा साहब के जमाने में जनाना भीतर था और बाहर बैठक में वे मोढ़े पर बैठे नेचा गुड़गुड़ाया करते। जगह की तंगी की वजह से उनके बाद बैठक भी जनाने में शामिल हो गई और घर की ड्योढ़ी पर परदा लटक गया। बैठक न रहने पर भी घर की इज्जत का ख्याल था, इसलिए परदा बोरी के टाट का नहीं, बढ़िया किस्म का रहता।

चौधरी पीरबख्श तालीम कम पा सके पर ब्याह हो ही गया। मौला के करम से बीवी की गोद जल्दी ही भरी। पीरबख्श ने रोजगार के तौर पर खानदान की इज्जत के ख्याल से एक तेल की मिल में मुंशीगीरी कर ली थी। तालीम ज्यादा नहीं तो क्या, सफेदपोश खानदान की इज्जत का पास तो था। मजदूरी और दस्तकारी उनके करने की चीजें न थीं। मिल के गोदाम में चौकी पर बैठते। कलम-दवात का काम था।

बीस रुपया महीना अधिक नहीं होता। चौधरी पीरबख्श को मकान सितवा की कच्ची बस्ती में लेना पड़ा। मकान का किराया दो रुपया था। आसपास गरीब लोगों की बस्ती थी। कच्ची गली के बीचोंबीच गली के मुहाने पर लगे कमेटी के नल से टपकटते पानी की काली धार बहती रहती। नाली के किनारे घास उग आई थी। उस पर मच्छरों और मक्खियों

के बादल उमड़ते रहते। सामने रमजानी धोबी की भट्ठी थी, जिसमें से धुआं और सज्जी मिले हुए कपड़ों की गंध उमड़ती रहती। दाईं ओर नागरा जूता बंनाने वाले बीकानेरी मोचियों के घर थे। बाईं ओर वर्कशाप में काम करने वाले कुली रहते थे।

इस सब बस्ती में चौधरी पीरबख्श ही पढ़े-लिखे सफेदपोश थे। सिर्फ उनके ही घर के दरवाजे पर परदा था। सब लोग चौधरीजी, मुंशीजी कहकर सलाम करते। उनके घर की औरतों को कभी किसी ने गली में नहीं देखा। इंशाअल्ला घर में औलाद थी तो वह भी लड़कियां। बच्चियां चार-पांच बरस की उम्र तक किसी कामकाज से बाहर निकलतीं और फिर घर की आबरू के ख्याल से बाहर निकलना मुनासिब न था। पीरबख्श खुद ही मुस्कराते हुए सुबह शाम कमेटी के नल से घड़े भर लाते।

चौधरी की तनख्वाह पन्द्रह वर्ष में बीस से पैंतीस हो गई। खुदा की बरकत होती है तो रुपये-पैसे की शक्ल में नहीं आस-औलाद की ही शक्ल में होती है। पंद्रह बरस में पांच बच्चे हुए। पहले तीन लड़कियां और बाद में दो लड़के। दूसरी लड़की होने को थी, तो पीरबख्श की वाल्दा मदद के लिए आईं। वालिद साहब का इन्तकाल हो चुका था। दूसरा कोई भाई वाल्दा की फिक्र करने आया नहीं। वे छोटे लड़के के यहां ही रहने लगीं।

जहां बाल-बच्चे और घर-बार होता है, सौ किस्म की झंझटें भी होती ही हैं। कभी बच्चे को तकलीफ है तो कभी जच्चा को। ऐसे वक्त में कर्ज की जरूरत कैसे न हो? घर-बार हो तो कर्ज भी होगा ही।

मिल की नौकरी का कायदा पक्का होता है। हर महीने की सात तारीख को गिनकर तनख्वाह मिल जाती है। पेशगी से मालिक को चिढ़ थी । कभी बहुत जरूरत पर ही मेहरबानी करते थे। जरूरत पड़ने पर चौधरी घर की कोई छोटी-मोटी चीज गिरवी रख उधार ले आते। गिरवी रखने में रुपये के आठ आने ही मिलते। ब्याज मिलाकर सोलह आने हो जाते और फिर चीज के घर लौट आने की संभावना न रहती।

मुहल्ले में चौधरी पीरबख्श की इज्जत थी। उस इज्जत का आधार था, घर के दरवाजे पर लटका परदा। भीतर जो हो, परदा सालम रहता। कभी बच्चों की खींच-खांच या बेदर्द हवा के झोंकों से उसमें छेद हो जाते, तो परदे की आड़ से हाथ सुई-धागा ले उसकी मरम्मत कर देते।

दिनों का खेल। मकान के दरवाजे के किवाड़ गलते-गलते बिल्कुल गल गए। कई दफे कसे जाने से पेंच टूट गए और सुराख ढीले पड़ गए। मकान-मालिक सुरजू पाण्डे को उसकी फिक्र न थी। चौधरी कभी जाकर कहते-सुनते, तो उत्तर मिलता, "कौन बड़ी रकम थमा देते हो? दो रुपल्ली किराया और वह भी छः-छः महीने का बकाया। जानते हो लकड़ी का क्या भाव है? न हो मकान छोड़ जाओ।" आखिर किवाड़ गिर गए। रात में

चौधरी उन्हें जैसे-तैसे चौखट से टिका देते। रातभर दहशत रहती—अगर कोई चोर आ जाए!

मुहल्ले में सफेदपोशी और इज्जत होने पर भी चोर के लिए घर में कुछ न था। शायद एक भी साबुत कपड़ा या बरतन ले जाने के लिए चोर को न मिलता। पर चोर तो चोर है। छिनने के लिए कुछ न हो, तो भी चोर का डर तो होता ही है। वह चोर जो ठहरा।

चोर से ज्यादा फिक्र थी आबरू की। किवाड़ न रहने पर परदा ही आबरू का रखवाला था। वह परदा भी तार-तार होते-होते एक रात आंधी में किसी भी हालत में लटकने लायक न रह गया। दूसरे दिन सुबह घर की एकमात्र पुश्तैनी चीज दरी दरवाजे पर लटक गई। मुहल्लेवालों ने देखा और चौधरी को सलाह दी, "अरे चौधरी इस जमाने में ऐसी दरी यों काहे खराब करोगे? बाजार से लाकर टाट का टुकड़ा लटका दो।"

पीरबख्श टाट की कीमत मिल से आते-जाते कई दफे पूछ चुके थे। दो गज टाट आठ आने से कम में न मिल सकता था। हंसकर बोले, "होने दो, क्या है? हमारे यहां पक्की हवेली में भी ड्योढ़ी पर दरी का ही परदा रहता था।"

कपड़े की महंगी के इस जमाने में घर की पांचों औरतों के शरीर से कपड़े जीर्ण होकर यों गिर रहे थे जैसे पेड़ अपनी छाल बदलते हैं। पर चौधरी साहब की आमदनी से दिन में एक दफे किसी तरह आटे से पेट भर सकने के अलावा कपड़े की गुंजाइश कहां थी? खुद उन्हें नौकरी पर जाना होता। पायजामे में जब पैबन्द संभालने की ताब नहीं रहती, मारकीन का नया कुरता-पायजामा जरूरी हो जाता। लाचार हो जाते।

घर में गिरवी रखने के लिए जब कुछ न हो, गरीब का एकमात्र सहायक होता है, पंजाबी खान। रहने की जगह-भर देखकर ही वह रुपया उधार दे सकता है। दस महीने पहले गोद के लड़के बरकत के जन्म के समय पीरबख्श को रुपये की जरूरत पड़ी थी। कहीं और कोई प्रबंध न हो सकने के कारण उन्होंने पंजाबी खान बबरअली खां से चार रुपये उधार ले लिए थे। बबरअली खां का रोजगार सितवा के उस कच्चे मुहल्ले में अच्छा-खासा चलता था। बीकानेरी मोची, वर्कशाप के मजदूर और कभी-कभी रमजानी धोबी, सभी बबर मियां से कर्ज लेते रहते थे। चौधरी पीरबख्श ने बबरअली को कर्ज और सूद की किश्त न मिलने पर अपने दो हाथ के डंडे से कई दफे ऋणी का दरवाजा पीटते देखा था। उन्हें साहूकार और ऋणी में बीच-बचाव भी करना पड़ा था। खान को वे शैतान समझते थे, लेकिन लाचार हो जाने पर उसी की ही शरण लेनी पड़ी। चार आना रुपया महीना पर चार रुपया कर्ज लिया। शरीफ, खानदानी, मुसलमान भाई का ख्याल कर बबरअली ने एक रुपया माहवार की किश्त मान ली। आठ महीने में कर्ज अदा होना तय हुआ।

खान की किश्त न दे सकने की हालत में अपने घर के दरवाजे पर फजीहत हो जाने की बात का ख्याल कर चौधरी के रोएं खड़े हो जाते। सात महीने फाका करके भी किसी तरह वे किश्त देते चले गए। लेकिन जब सावन में बरसात पिछड़ गई और बाजरा भी रुपये का तीन सेर मिलने लगा, किश्त देना संभव न रहा। खान सात तारीख की शाम को ही आया। चौधरी पीरबख्श ने खुशामद में खान की दाढी छूकर और अल्लाह की कसम खाकर एक महीने की मुआफी चाही। अगले महीने में एक का सवा देने का वायदा किया। खान टल गया।

भादों में हालत और भी परेशानी की हो गई। बच्चों की मां की तबीयत रोज-रोज़ गिरती ही जा रही थी। खाया-पिया उसके पेट में न ठहरता था। पथ्य के लिए उसे गेहूं की रोटी देना जरूरी हो गया। गेहूं मुश्किल से और रुपये का सिर्फ अढ़ाई सेर। बीमार का जी ठहरा, कभी प्याज के टुकड़े या धनिये की खुशबू के लिए ही मचल जाता। कभी तनिक-सी सौंफ, अजवाइन, काले नमक की ही जरूरत हो, तो पैसे की कोई चीज मिलती ही नहीं। बाजार में पैसे का नाम ही रह गया था। बात-बात में इकन्नी निकल जाती। चौधरी को दो रुपये महंगाई भत्ते के भी मिले। पर पेशगी लेते-लेते तनख्वाह के दिन केवल चार ही रुपये हिसाब में निकले।

पिछले हफ्ते बच्चे लगभग फाके से थे। चौधरी कभी गली से दो पैसे की चौलाई खरीद लाते, कभी बाजरा उबालकर सब लोग कटोरा-कटोरा भर पी लेते। बड़ी कठिनता से मिले चार रुपयों में से सवा रुपया खान के हाथ में धर देने की हिम्मत चौधरी को न हुई।

मिल से घर लौटते समय मण्डी की ओर टहल गए। दो घण्टे बाद जब समझा खान टल गया होगा, अनाज की गठरी लेकर घर पहुंचे। खान के भय से दिल डूब रहा था, लेकिन दूसरी ओर चार भूखे बच्चों, उनकी मां, दूध न उतर सकने के कारण सूखकर कांटा हो रहे गोद के बच्चे और चलने-फिरने से लाचार बूढ़ी मां की भूख से बिलखती सूरतें आंखों के सामने नाच जातीं। धड़कते हुए हृदय से वे कहते जाते, "मौला सब देखता है, वह रहमत करेगा।"

सात तारीख की शाम को असफल होकर खान आठ की सुबह खूब तड़के चौधरी के मिल चले जाने से पहले ही अपना डंडा हाथ में लिये दरवाजे पर आ पहुंचा।

चौधरी ने रात-भर सोच-सोचकर खान के लिए बयान तैयार किया था। मिल के मालिक लालाजी चार रोज के लिए बाहर गए हैं। उनके दस्तखत के बिना किसी को भी तनख्वाह नहीं मिल सकी। तनख्वाह मिलते ही वह सवा रुपया हाजिर करेगा। माकूल वजह बताने पर भी खान बहुत देर गुर्राता रहा, "अम वतन छोड़कर परदेश में पड़ा है, ऐसे रुपिया

चोड़ देने के वास्ते? अमारा भी बाल-बच्चा है। चार रोज में रुपिया नई देगा तो अम तुम्हारा..... ।"

पांचवें दिन रुपया कहां से आ जाता। तनख्वाह मिले हफ्ता भी नहीं हुआ था। मालिक ने पेशगी देने से साफ इनकार कर दिया। छठे दिन किस्मत से इतवार था। मिल में छुट्टी रहने पर भी चौधरी खान के डर से सुबह ही बाहर निकल गए। जान-पहचान के कई आदमियों के यहां गए। इधर-उधर की बातचीत कर वे कहते, "अरे, भाई, हों तो बीस आने पैसे दो-एक रोज के लिए देना। ऐसी ही ज़रूरत आ पड़ी है।"

"मियां, पैसे कहां इस ज़माने में ...." उत्तर मिलता, "पैसे का मोल कौड़ी नहीं रह गया। हाथ में आने से पहले ही उधार में उठ गया तमाम।"

दोपहर हो गई। खान आया भी होगा तो इस वक्त तक बैठा नहीं रहेगा, चौधरी ने सोचा और घर की तरफ चल दिए। घर पहुंचने पर सुना कि खान आया था और घण्टे-भर तक दरवाजे पर लटके दरी के परदे को ठेल-ठेलकर गाली देता रहा। परदे की आड़ से बड़ी बी के बार-बार खुदा की कसम खाकर यकीन दिलाने पर कि चौधरी बाहर गए हैं, रुपया लेने गए हैं, खान गाली देकर कहता, "नई, बदजात चोर भीतर ही छिपा है। अम चार घण्टे में फिर आता है। रुपिया लेकर जाएगा। रुपया नहीं देगा तो उसकी खाल उतारकर बाजार में बेच देगा...अमारा रुपिया क्या अराम का है?"

चार घण्टे से पहले ही खान की पुकार सुनाई दी—"चौधरी!"

पीरबख्श के शरीर में बिजली-सी तड़प गई। हाथ-पैर सुन्न और गला खुश्क।

गाली देकर परदे को ठेलकर खान के दुबारा पुकारने पर चौधरी का शरीर निर्जीवप्राय होने पर भी निश्चेष्ट न रह सका। वे उठकर बाहर आ गए, खान आगबबूला हो रहा था, "पैसा नई देने के वास्ते चिपता है!" एक से एक चढ़ती हुई तीन गालियां एक साथ खान के मुंह से पीरबख्श के पुरखों और पीरों के नाम निकल गईं। इस भयंकर आघात से पीरबख्श का खानदानी रक्त भड़क उठने के बजाय और भी निर्जीव हो गया। खान के घुटने छूकर अपनी मुसीबत बताकर मुआफी के लिए खुशामद करने लगे।

खान की तेजी बढ़ गई। उसके ऊंचे स्वर से पड़ोस के मोची और मजदूर चौधरी के दरवाजे के सामने इकट्ठे हो गए। खान क्रोध में डंडा फटकारकर कह रहा था—"पैसा नहीं देना था, लिया क्यों? तनख्वाह किधर में जाता? अरामी अमारा पैसा मारेगा। अम तुम्हारा खाल खींच लेगा। पैसा नहीं है, तो घर पर परदा लटकाकर शरीफजादा कैसे बनता? तुम अमको बीबी का गैना दो, बर्तन दो, कुछ भी दो, अम तो ऐसे नहीं जाएगा।"

बिल्कुल बेबस और लाचारी में दोनों हाथ उठाकर खुदा से खान के लिए दुआ मांगकर पीरबख्श ने कसम खाई, एक पैसा भी घर में नहीं, बर्तन भी नहीं, कपड़ा भी नहीं, खान चाहे तो बेशक उसकी खाल उतारकर बेच ले।

खान और आग हो गया—"अम तुमारा दुआ का क्या करेगा? अम तुम्हारा खाल का क्या करेगा? उसका तो जूती बी नई बनेगा। तुमारा खाल से तो ये टाट अच्छा।"

खान ने ड्योढ़ी पर लटका दरी का परदा झटक लिया। ड्योढ़ी से परदा हटने के साथ ही जैसे चौधरी के जीवन की डोर टूट गई। वह डगमगाकर जमीन पर गिर पड़े।

इस दृश्य को देख सकने की ताब चौधरी में न थी। परंतु द्वार पर खड़ी भीड़ ने देखा, घर की औरतें और लड़कियां परदे के दूसरी ओर घटती घटना के आतंक से आंगन के बीचोंबीच इकट्ठी हो खड़ी होकर कांप रही थीं। सहसा परदा हट जाने से औरतें ऐसी सिकुड़ गईं जैसे उनके शरीर का वस्त्र खींच लिया गया हो। वह परदा ही तो घर भर की औरतों के शरीर का वस्त्र था। उनके शरीर पर बचे चीथड़े उनके एक-तिहाई अंग ढकने में भी असमर्थ थे।

जाहिल भीड़ ने घृणा और शरम से आंखें फेर लीं। उस नग्नता की झलक से खान की कठोरता भी पिघल गई। ग्लानि से थूककर परदे को आंगन में वापस फेंककर क्रुद्ध निराशा में उसने कहा—"लाहौल बिला...।" और असफल लौट गया।

भय से चीखकर ओट में हो जाने के लिए भागती हुई औरतों पर दया कर भीड़ छंट गई। चौधरी बेसुध थे। जब उन्हें होश आया, ड्योढ़ी का परदा आंगन के सामने पड़ा था। परंतु उसे उठाकर फिर से लटका देने की सामर्थ्य उनमें शेष न थी। शायद अब उसकी आवश्यकता भी न रही थी। परदा जिस भावना का अवलम्ब था, वह मर चुकी थी।

प्रश्न अभ्यास

(1,) पीरबख्श को बस्ती के सभी लोग सलाम क्यों करते थे? क्योंकि

(क) वे बड़े पैसे वाले थे।

(ख) वे बुजुर्ग थे।

(ग) गरीबों की बस्ती में अकेले वे ही पढ़े लिखे सफेदपोश थे, सिर्फ उनके ही दरवाजे पर परदा था।

सही उत्तर पर √ लगाओ।

(2) नीचे लिखे वाक्य को पढ़कर प्रश्नों के उत्तर दो।

"पीरबख्श खुद ही मुस्कराते हुए सुबह शाम कमेटी के नल से घड़े भर लाते।"

(क) पीरबख्श बाहर सड़क के नल से पानी क्यों लाते थे?

(ख) उनका मकान कैसे मुहल्ले में था? वे मकान का कितना किराया देते थे?

(ग) उन्होंने इतने कम किराये का मकान ही क्यों लिया?

(घ) उनके घर की औरतें पानी क्यों नहीं लाती थीं?

(3) नीचे लिखे वाक्य को पढ़कर प्रश्नों के उत्तर दो।

"रात भर दहशत रहती—अगर कोई चोर आ जाए!"

(क) उन लोगों को यह दहशत कब से रहने लगी?

(ख) चोर उनके घर से क्या ले जा सकता था?

(ग) उन्होंने या मकान मालिक ने घर में दरवाजे क्यों नहीं लगवाए?

(घ) चोर से ज्यादा पीरबख्श को किस बात की फिक्र थी?

(4) दरवाजे पर दरी क्यों लटका दी गई?

(5) बबरअली खां कौन था और उससे किन लोगों ने कर्ज लिया था?

(6) चौधरी के लिए कर्ज की किश्त दे पाना संभव क्यों न रहा?

(7) नीचे लिखे वाक्य को पढ़कर प्रश्नों के उत्तर दो।

"दो घंटे बाद जब समझा खान टल गया होगा, अनाज की गठरी लेकर घर पहुंचे।"

(क) चौधरी खान से छिप क्यों रहे थे?

(ख) चौधरी ने खान से कितना कर्ज लिया था और किस लिए?

(ग) कर्ज लौटाने के लिए क्या तय हुआ था? क्या चौधरी उसे निभा पाए?

(8) नीचे लिखे वाक्य को पढ़कर प्रश्नों के उत्तर दो।

"तुम अमको बीबी का गैना दो, बर्तन दो, कुछ भी दो, अम तो ऐसे नहीं जाएगा।"

(क) यह वाक्य कौन, किससे, क्यों कह रहा है?

(ख) पीरबख्श उसे कुछ देकर अपना पीछा क्यों नहीं छुड़ाता?

(ग) संक्षेप में बताओ कि पीरबख्श को ये बातें क्यों सुननी पड़ीं?

(घ) पीरबख्श ने खान की बातों का क्या उत्तर दिया?

(9) नीचे लिखे वाक्य को पढ़कर प्रश्नों के उत्तर दो।

"भय से चीखकर ओट में हो जाने के लिए भागती हुई औरतों पर दया कर भीड़ छंट गई, चौधरी बेसुध थे।"

(क) भय से चीखकर औरतों के भागने का क्या कारण था?

(ख) इसका प्रभाव भीड़ पर क्या पड़ा?

(ग) चौधरी पीरबख्श बेसुध होकर क्यों गिर पड़े?

(घ) कठोर हृदय वाले खान को असफल होकर क्यों लौटना पड़ा?

(ङ) क्रुद्ध और निराश होकर खान ने क्या कहा?

(च) फिर से परदा लटका देने की सामर्थ्य चौधरी पीरबख्श में क्यों न रही?

(10) नीचे लिखे अवतरण में आए उर्दू शब्दों को रेखांकित करो।

"खुदा की बरकत होती है तो रुपये पैसे की शक्ल में नहीं, आस-औलाद की ही शक्ल में होती है। दूसरी लड़की होने को थी, तो पीरबख्श की वाल्दा मदद के लिए आईं। वालिद साहब का इन्तकाल हो चुका था। दूसरा कोई भाई वाल्दा की फिक्र करने आया नहीं।"

भगवतीचरण वर्मा

भगवतीचरण वर्मा का जन्म 30 अगस्त, 1903 को उत्तर प्रदेश के उन्नाव जिले के शफीपुर ग्राम में हुआ था। पांच वर्ष की उम्र में ही पिता का देहांत हो जाने के कारण छोटी उम्र में ही इनके कंधे पर परिवार का भार आ गया। जीवन संघर्ष में जूझते हुए इन्होंने बी.ए., एल.एल.बी. की शिक्षा प्राप्त की और कानपुर में वकालत करने लगे। लेकिन वकालत में इनका दिल न लगा और ये अधिकांश समय साहित्य सृजन को देने लगे। आठवीं कक्षा में पढ़ते समय इनकी पहली कविता ***'प्रताप'*** में छपी थी। वकालत करते समय तक ये कवि रूप में विख्यात हो गए थे। कविता से प्रारंभ करके इन्होंने कहानी, उपन्यास, निबंध, नाटक आदि बहुत कुछ लिखा।

साहित्यिक होते हुए भी वर्मा जी अध्यवसायी पुरुष थे। जीविका के लिए उन्होंने रेडियो में नौकरी की, सिनेमा के लिए कहानियां और संवाद लिखे, पत्रों का सम्पादन एवं प्रकाशन किया। काफी समय तक ये संसद सदस्य भी रहे। दिल्ली में 1980 में इनकी मृत्यु हुई।

वर्मा जी के प्रमुख उपन्यास हैं—***'चित्रलेखा', 'टेढ़े मेढ़े रास्ते', 'तीन वर्ष', 'आखिरी दांव', 'अपने खिलौने', 'भूले बिसरे चित्र', 'सामर्थ्य और सीमा', 'रेखा', 'सीधी सच्ची बातें'*** और ***'सबहिं नचावत राम गुसाईं'***। इनके कहानी-संग्रहों के नाम हैं—***'इन्स्टालमेंट', 'दो बांके', 'राख और चिनगारी'*** तथा ***'मोर्चेबंदी'***। इनके अतिरिक्त इन्होंने नाटक और निबंध भी लिखे हैं। ***'चित्रलेखा'*** उपन्यास पर बनी फिल्म बड़ी प्रसिद्ध हुई थी। इन्हें साहित्य अकादमी का पुरस्कार भी मिल चुका है।

'प्रायश्चित' कहानी वर्मा जी की प्रतिनिधि रचना है। इसमें उन्होंने भारतीय समाज को जिस रूप में देखा है, उसे उसी रूप में प्रस्तुत किया है। समाज के उच्च वर्ग से लेकर निम्न वर्ग तक उनकी दृष्टि बराबर गई है। इन वर्गों में पाए जाने वाले अंधविश्वास पर उन्होंने हास्य व्यंग्य के पैने हथियार से वार किया है। कबरी बिल्ली और रामू की बहू की नोंक झोंक के माध्यम से उन्होंने हिंदू घर का सचित्र विवरण प्रस्तुत किया है। प्रायश्चित की समस्या उठने पर समाज के ठेकेदार अपने-अपने हक के साथ सामने आ जाते हैं। उनके मुखौटों को उतारने के साथ-साथ वर्मा जी ने कहानी को अंत में कहानी ही बना दिया है जिससे पाठक के अधरों पर स्मित हास्य उभर आए।

प्रायश्चित

अगर कबरी बिल्ली घर भर में किसी से प्रेम करती थी तो रामू की बहू से, और अगर रामू की बहू घर भर में किसी से घृणा करती थी तो कबरी बिल्ली से। रामू की बहू, दो महीने हुए, मायके से प्रथम बार ससुराल आई थी—पति की प्यारी और सास की दुलारी चौदह वर्ष की बालिका। भण्डार-घर की चाबी उसकी करधनी में लटकने लगी, नौकरों पर उसका हुक्म चलने लगा और रामू की बहू घर में सब-कुछ। सासजी ने माला ली और पूजा-पाठ में मन लगाया।

लेकिन बहू ठहरी चौदह वर्ष की बालिका, कभी भण्डार-घर खुला है, तो कभी भण्डार-घर में बैठे-बैठे सो गई। कबरी बिल्ली को मौका मिला, घी-दूध पर वह जुट गई। रामू की बहू की जान आफ़त में और कबरी बिल्ली के छक्के-पंजे। रामू की बहू हांडी में घी रखते-रखते ऊंघ गई और बचा हुआ घी कबरी के पेट में। रामू की बहू दूध ढककर मिसरानी को जिन्स देने गई और दूध नदारद। अगर बात यहीं तक रह जाती तो भी बुरा न था। कबरी रामू की बहू को कुछ ऐसा परख गई थी कि रामू की बहू के लिए खाना-पीना दुश्वार। रामू की बहू के कमरे में से भरी कटोरी पहुंची और रामू जब तक आए, तब तक कटोरी साफ चटी हुई बाजार से मलाई आई और जब तक रामू की बहू ने पान लगाया, मलाई गायब। रामू के बहू ने तय कर लिया कि या तो वही घर में रहेगी या कबरी बिल्ली ही। मोर्चाबन्दी हो गई और दोनों सतर्क। बिल्ली फंसाने का कठघरा आया, उसमें दूध, मलाई, चूहे तथा बिल्ली को स्वादिष्ट लगने वाले विविध प्रकार के व्यंजन रखे गए। लेकिन बिल्ली ने उधर निगाह तक न डाली। इधर कबरी ने सरगर्मी दिखलाई। अभी तक तो वह रामू की बहू से डरती थी, पर अब वह साथ लग गई। लेकिन इतने सारे फासले पर कि रामू की बहू उसको हाथ न लगा सके।

कबरी के हौंसले बढ़ जाने से रामू की बहू का घर में रहना मुश्किल हो गया। उसे मिलती थीं सास की मीठी झिड़कियां और पतिदेव को मिलता था रूखा-सूखा भोजन।

एक दिन रामू की बहू ने रामू के लिए खीर बनाई। पिस्ता, बादाम, मखाने और तरह-तरह के मेवे दूध में औटाए गए, सोने का बर्क चिपकाया

गया और खीर से भरकर कटोरा कमरे के एक ऐसे ऊंचे ताख पर रखा गया, जहां बिल्ली न पहुंच सके। रामू की बहू इसके बाद पान लगाने में लग गई।

उधर कमरे में बिल्ली आई। ताख के नीचे खड़े होकर उसने ऊपर कटोरे की ओर देखा। सूंघा, माल अच्छा है। ताख की ऊंचाई अन्दाजी और देखा रामू की बहू पान लगा रही है। पान लगाकर रामू की बहू सासजी को पान देने चली गई तो कबरी ने छलांग मारी। पंजा कटोरे में लगा और कटोरा झनझनाहट की आवाज के साथ फर्श पर।

आवाज रामू की बहू के कान में पहुंची। सास के सामने पान फेंककर वह दौड़ी। क्या देखती है कि फूल का कटोरा टुकड़े-टुकड़े, खीर फर्श पर और बिल्ली डटकर खीर उड़ा रही है। रामू की बहू को देखते ही कबरी चम्पत।

रामू की बहू पर खून सवार हो गया, न रहे बांस, न बजे बांसुरी। रामू की बहू ने कबरी की हत्या पर कमर कस ली। रात-भर उसे नींद नहीं आई। किस दांव से कबरी पर वार किया जाए कि फिर जिन्दा न बचे—पड़े-पड़े यही सोचती रही। सुबह हुई तो वह देखती है कि कबरी देहरी पर बैठी बड़े प्रेम से उसे ताक रही है।

रामू की बहू ने कुछ सोचा, इसके बाद मुस्कराती हुई उठी। कबरी रामू की बहू के उठते ही खिसक गई। रामू की बहू एक कटोरा दूध दरवाजे की देहरी पर रखकर चली गई। हाथ में पाटा लेकर लौटी तो देखती है कि कबरी दूध पर जुटी हुई है। मौका हाथ में आ गया। सारा बल लगाकर पाटा उसने बिल्ली पर पटक दिया। कबरी हिली न डुली, न चीखी न चिल्लाई, बस एकदम पलट गई।

आवाज जो हुई तो महरी झाड़ू छोड़कर, मिसरानी रसोई छोड़कर और सास पूजा छोड़कर घटनास्थल पर उपस्थित हो गईं। अब रामू की बहू सिर झुकाए हुए अपराधिनी की भांति बातें सुन रही है।

महरी बोली—"अरे राम! बिल्ली तो मर गई। मांजी, बिल्ली की हत्या बहू से हो गई, यह तो बुरा हुआ।"

मिसरानी बोली—"मांजी, बिल्ली की हत्या और आदमी की हत्या बराबर है। हम तो रसोई न बनावेंगी जब तक बहू के सिर हत्या होगी।"

सास बोली—"हां, ठीक तो कहती हो, अब जब तक बहू के सिर से हत्या न उतर जाए, तब तक न कोई पानी पी सकता है, न खाना खा सकता है। बहू यह क्या कर डाला?"

महरी ने कहा—"फिर क्या हो, कहो तो पण्डितजी को बुला लाऊं?"

सास की जान में जान आई—"अरे हां, जल्दी दौड़कर पण्डितजी को बुला ला।"

बिल्ली की हत्या की खबर बिजली की तरह पास-पड़ोस में फैल गई।

पड़ोस की औरतों का रामू के घर में तांता बंध गया। चारों तरफ से प्रश्नों की बौछार और रामू की बहू सिर झुकाए बैठी है।

पण्डित परमसुख को जब यह खबर मिली, उस समय वे पूजा कर रहे थे। खबर मिलते ही वे उठ खड़े हुए। पण्डिताइन से मुस्कराते हुए बोले—"भोजन न बनाना। लाला घासीराम की पतोहू ने बिल्ली मार डाली। प्रायश्चित होगा, पकवानों पर हाथ लगेगा।"

पण्डित परमसुख चौबे छोटे-से, मोटे-से आदमी थे। लम्बाई चार फीट दस इंच और तोंद का घेरा अट्ठावन इंच। चेहरा गोल-मटोल, बड़ी-बड़ी मूंछें, रंग गोरा, गोखुरी चोटी कमर तक पहुंची हुई।

कहा जाता है कि मथुरा में जब पंसेरी खुराक वाले पण्डित को ढूंढ़ा जाता था तो पण्डित परमसुखजी को उस लिस्ट में प्रथम स्थान दिया जाता था।

पण्डित परमसुख पहुंचे और कोरम पूरा हुआ। पंचायत बैठी। सासजी, मिसरानीजी, किसनू की मां, छुन्नू की दादी और पण्डित परमसुख। बाकी स्त्रियां बहू से सहानुभूति प्रकट कर रही थीं।

किसनू की मां ने कहा—"पण्डितजी, बिल्ली की हत्या करने से कौन-सा नरक मिलता है?"

पण्डित परमसुख ने पत्रा देखते हुए कहा—"बिल्ली की हत्या अकेले से तो नरक का नाम नहीं बताया जा सकता। वह महूरत (मुहूर्त) भी मालूम हो, जब बिल्ली की हत्या हुई, तो नरक का पता लग सकता है।"

"यही कोई सात बजे सुबह।" मिसरानीजी ने कहा।

पण्डित परमसुख ने पत्रे के पन्ने उलटे, अक्षरों पर उंगलियां चलाईं, माथे पर हाथ लगाया और कुछ सोचा। चेहरे पर धुंधलापन आया, माथे पर बल पड़े, नाक सिकोड़ी और स्वर गंभीर हो गया, "हरे कृष्ण, हरे कृष्ण! बड़ा बुरा हुआ! प्रातःकाल ब्राह्म मुहूर्त में बिल्ली की हत्या! घोर कुम्भीपाक नरक का पाप है। रामू की मां, यह तो बड़ा बुरा हुआ।"

रामू की मां की आंखों में आंसू आ गए, "तो फिर पण्डित जी अब क्या होगा, आप ही बतलाएं।"

पण्डित परमसुख मुस्कराए, "रामू की मां चिन्ता की कौन-सी बात है, हम पुरोहित फिर कौन दिन के लिए हैं? शास्त्रों में प्रायश्चित का विधान है, सो प्रायश्चित से सब-कुछ ठीक हो जावेगा।"

रामू की मां ने कहा—"पण्डितजी इसीलिए तो आपको बुलवाया था, अब आगे बताओ क्या किया जाए?"

"क्या किया जाए?—यही कि एक सोने की बिल्ली बनवाकर बहू से दान करवा दी जाए। जब तक बिल्ली न दे दी जाएगी, तब तक तो घर अपवित्र रहेगा। बिल्ली दान देने के बाद इक्कीस दिन का पाठ हो जाए।"

छुन्नू दी दादी—"हां, और क्या! पण्डितजी ठीक ही तो कहते हैं। बिल्ली अभी दान दे दी जाए और पाठ फिर हो जाए।"

रामू की मां ने कहा, "तो पण्डितजी, कितने तोले की बिल्ली बनवाई जाए?"

पण्डित परमसुखजी मुस्कराए, अपनी तोंद पर हाथ फेरते हुए उन्होंने कहा—"बिल्ली कितने तोले की बनवाई जाए? अरे रामू की मां, शास्त्रों में तो लिखा है कि बिल्ली के वजन भर सोने की बिल्ली बनवाई जाए। लेकिन अब कलियुग आ गया है, धर्म-कर्म का नाश हो गया है, श्रद्धा नहीं रही। सो रामू की मां, बिल्ली के तोल भर की बिल्ली तो क्या बनेगी, क्योंकि बिल्ली बीस-इक्कीस सेर से क्या कम होगी! हां, कम-से-कम इक्कीस तोले की बिल्ली बनवाकर दान कर दो, और आगे आपकी श्रद्धा।"

रामू की मां ने आंखें फाड़कर पण्डित परमसुख की ओर देखा—"अरे बाप रे! इक्कीस तोला सोना! पण्डितजी यह तो बहुत है। तोला-भर की बिल्ली से काम न निकलेगा?"

पण्डित परमसुख हंस पड़े—"रामू की मां! एक तोला सोने की बिल्ली! अरे रुपये का लोभ बहू से बढ़ गया? बहू के सिर पर बड़ा पाप है। इसमें इतना लोभ ठीक नहीं।"

मोल-तोल शुरू हुआ और मामला ग्यारह तोले की बिल्ली पर ठीक हो गया। इसके बाद पूजा-पाठ की बात आई।

पण्डित परमसुख ने कहा—"इसमें क्या मुश्किल है? हम लोग किस दिन के लिए हैं? रामू की मां, मैं पाठ कर दिया करूंगा, पूजा की सामग्री आप हमारे घर भिजवा देना।"

"पूजा में सामान कितना लगेगा?"

"अरे कम-से-कम सामान में पूजा कर देंगे। दान के लिए दस मन गेहूं, एक मन चावल, एक मन दाल, मन-भर तिल, पांच मन जौ, पांच मन चना, चार पंसेरी घी और मन-भर नमक भी लगेगा। बस इतने में ही काम चल जाएगा।"

"अरे बाप रे! इतना सामान! पण्डितजी इसमें तो डेढ़-सौ रुपया खर्च हो जाएगा।" रामू की मां ने रुआंसी होकर कहा।

"पर इससे कम में तो काम न चलेगा। बिल्ली की हत्या बड़ा पाप है। खर्च को देखते वक्त पहले बहू के पाप को भी देखो। यह तो प्रायश्चित है, कोई हंसी-खेल थोड़े ही है। और जैसी जिसकी मर्यादा प्रायश्चित में वैसा उसे खर्च भी करना पड़ता है। आप लोग ऐसे-वैसे थोड़े हैं। अरे डेढ़-सौ रुपया आप लोगों के हाथों का मैल है।"

पण्डित परमसुख की बात से पंच प्रभावित हुए। किसनू की मां ने कहा, "पण्डितजी ठीक तो कहते हैं। बिल्ली की हत्या कोई ऐसा-वैसा पाप तो नहीं। बड़े पाप के लिए बड़ा खर्च भी चाहिए।"

छुन्नू की दादी ने कहा—"और नहीं तो क्या, दान-पुण्य से ही पाप कटते हैं। दान-पुण्य किफायत ठीक नहीं।"

मिसरानी ने कहा—"और फिर मांजी, आप लोग बड़े आदमी ठहरे। आप लोगों को इतना खर्च कौन अखरेगा।"

रामू की मां ने चारों ओर देखा—सभी पंच पण्डितजी के साथ। पण्डित परमसुख मुस्करा रहे थे। उन्होंने कहा—"रामू की मां, एक तरफ तो बहू के लिए कुम्भीपाक नरक है, और दूसरी तरफ तुम्हारे जिम्मे थोड़ा-सा खर्च। सो उससे मुंह न मोड़ो।" फिर जरा कुछ बिगड़कर बोले—"रामू की मां यह तो खुशी की बात है, अगर तुम्हें यह अखरता हो, तो न करो—मैं चला।" इतना कहकर पण्डितजी ने पोथी-पत्रा बटोरा।

"अरे पण्डितजी, रामू की मां को कुछ नहीं अखरता। बेचारी को कितना दुःख है, बिगड़ो नहीं।"—मिसरानी, छुन्नू की दादी और किसनू की मां ने एक स्वर में कहा।

रामू की मां ने पण्डितजी के पैर पकड़े और पण्डितजी ने जमकर आसन लगाया।

"और क्या हो?"

"इक्कीस दिन के पाठ के इक्कीस रुपये और इक्कीस दिन तक दोनों वक्त पांच-पांच ब्राह्मणों को भी भोजन करवाना पड़ेगा।" कुछ रुककर पण्डित परमसुख ने कहा—"इसकी चिंता मत करो, मैं अकेले दोनों समय भोजन कर लूंगा और मेरे अकेले से पांच ब्राह्मणों के भोजन का फल मिल जाएगा।"

"यह तो पण्डितजी ठीक कहते हैं, पण्डितजी की तोंद तो देखो।"—मिसरानी ने मुस्कराते हुए पण्डितजी पर व्यंग्य किया।

"अच्छा तो अब प्रायश्चित का प्रबंध करवाओ। रामू की मां, ग्यारह तोला सोना निकालो, मैं उसकी बिल्ली बनवा लाऊं। दो घण्टे में मैं बनवाकर लौटूंगा। तब तक पूजा का सब प्रबन्ध कर रक्खो और देखो पूजा के लिए..."

पण्डितजी की बात समाप्त भी न हुई थी कि महरी हांफती हुई कमरे में घुस आई। सब लोग चौंक उठे। रामू की मां ने घबराकर कहा—"अरी, क्या हुआ री?"

महरी ने लड़खड़ाते स्वर में कहा—"मांजी, बिल्ली तो उठकर भाग गई।"

प्रश्न अभ्यास

(1) रामू की मां ने पूजा-पाठ में मन क्यों लगाया?

(2) शादी के समय रामू की बहू की क्या उम्र थी?

(3) कबरी बिल्ली ने किस प्रकार बहू की नाक में दम कर रखा था?

(4) रामू को रूखा-सूखा भोजन क्यों मिलता था?

(5) नीचे लिखे वाक्य को पढ़कर प्रश्नों के उत्तर दो।

"अब रामू की बहू सिर झुकाए हुए अपराधिनी की भांति बातें सुन रही है।"

(क) रामू की बहू ने कौन-सा अपराध किया था?
(ख) बहू सिर झुकाए हुए कौन-सी बातें सुन रही है?
(ग) पण्डितजी को क्यों बुलवाया गया था?
(घ) अपराध के प्रायश्चित के लिए किसने क्या तय किया?

(6) सोने का मोल-तोल कहां से शुरू होकर कहां समाप्त हुआ?

(7) नीचे लिखे वाक्य को पढ़कर प्रश्नों के उत्तर दो।

"रामू की मां ने पण्डितजी के पैर पकड़े और पण्डितजी ने जमकर आसन लगाया।"

(क) रामू की मां ने पण्डितजी के पैर क्यों पकड़े?
(ख) 'पण्डितजी ने जमकर आसन लगाया'—इसका क्या अर्थ है?
(ग) रामू की मां की धर्मभीरुता (धर्म से डरना) के कारण पण्डितजी ने क्या नाटक किया?
(घ) इस नाटक के पीछे पंडितजी का क्या उद्देश्य था?
(ङ) क्या वे अपने उद्देश्य में सफल हुए?

(8) मिसरानी ने काम करना क्यों बंद कर दिया?

नीचे लिखे उत्तरों में से सही उत्तर पर ✓ लगाओ—

(क) क्योंकि वह कामचोर थी।
(ख) क्योंकि उसका मांजी से झगड़ा हो गया था।
(ग) क्योंकि बहू के सर पाप लग गया था।
(घ) क्योंकि खाना बनाने का सामान खत्म हो गया था।

(9) यदि कबरी बिल्ली सचमुच मर गई होती, तो क्या होता?

(10) पंचायत के पंच कौन-कौन थे?

(11) नीचे लिखे वाक्य पढ़कर प्रश्नों के उत्तर दो।

"रामू की मां ने घबरा कर कहा—अरी, क्या हुआ री?"

(क) रामू की मां ने यह बात किससे पूछी?
(ख) रामू की मां को क्या जवाब मिला?
(ग) जवाब सुनकर रामू की मां ने क्या सोचा होगा?
(घ) जवाब की पंडितजी पर क्या प्रतिक्रिया हुई होगी?
(ङ) पंचायत के पंचों को जवाब कैसा लगा होगा?

(12) नीचे लिखे अवतरण को पढ़कर उन शब्दों के नीचे रेखा खींचो जिनसे पता लगता है कि यह कहानी कम से कम चालीस वर्ष पहले लिखी गई थी।

"दान के लिए करीब दस मन गेहूं, एक मन चावल, एक मन दाल, मन भर तिल, पांच मन जौ, चार पंसेरी घी और मन भर नमक लगेगा।"

सुदर्शन

सुदर्शन का जन्म 1895 ई. में पंजाब के सियालकोट नामक स्थान पर हुआ था। प्रारम्भिक शिक्षा के बाद इन्होंने वहीं के स्कॉटिश मिशन कॉलेज में प्रवेश लिया। इंटर पास करने के बाद ये जालंधर चले गए। वहाँ से उर्दू में प्रकाशित होने वाले दैनिक समाचार पत्र ***'आर्य-गज़ट'*** के ये सम्पादक बना दिए गए। इनका वास्तविक नाम पंडित बदरीनाथ था किंतु इन्होंने लेखक के रूप में पंडित सुदर्शन का नाम अपनाया। अपने पिता से इन्होंने आर्य समाज के संस्कार पाए थे। आर्य समाज के सिद्धांतों का प्रचार करने के लिए ही इन्होंने लेखन और सम्पादन किया। अपने कार्य क्षेत्र के लिए इन्होंने बम्बई को चुना जहाँ वे फिल्म लेखक के रूप में प्रसिद्ध हुए। बम्बई में 16 दिसंबर 1967 को इनकी मृत्यु हुई।

सुदर्शन ने उर्दू में कहानियाँ लिखना शुरू किया था। बाद में ये हिन्दी में लिखने लगे और आजीवन हिन्दी में ही लिखते रहे। इनकी पहली हिन्दी कहानी ***'सरस्वती'*** पत्रिका में सन् 1920 ई. में प्रकाशित हुई थी। इनके अनेक कहानी संग्रह छपे हैं जिनमें प्रमुख हैं— ***'पुष्पलता', 'सुप्रभात', 'सुदर्शन सुधा', 'सुदर्शन सुमन', 'पनघट',*** और ***'चार कहानियाँ'***। इन्होंने उपन्यास और नाटक भी लिखे। इनके प्रमुख उपन्यास हैं— ***'परिवर्तन', 'भागवंती',*** और ***'राजकुमार सागर'***। इनके नाटकों के नाम हैं — ***'अंजना', सिकंदर'*** और ***'भाग्यचक्र'***। इनकी कहानियों पर आधारित 22 फिल्में बनी हैं।

प्रेमचंद की तरह सुदर्शन भी आदर्शवादी कहानियाँ लिखते थे। इनकी कहानियों में लोकप्रियता के सभी गुण मिलते हैं। ***'साइकिल की सवारी'*** हास्य व्यंग्य से पूर्ण कहानी है। सीधी-सरल भाषा में इन्होंने साइकिल चलाना सीखने वाले की आकांक्षाओं और कल्पनाओं का सजीव चित्रण किया है। ऐसे व्यक्ति के मनोभाव वास्तविक घटनाओं के साथ प्रस्तुत किए गए हैं। बोलचाल की मुहावरेदार भाषा में कहानी कहना सुदर्शन की विशेषता है। ***'साइकिल की सवारी'*** सुदर्शन की अत्यंत लोकप्रिय रचना है।

साइकिल की सवारी

भगवान् ही जानता है कि जब मैं किसी को साइकिल की सवारी करते या हारमोनियम बजाते देखता हूं तब मुझे अपने ऊपर कैसी दया आती है। सोचता हूं, भगवान् ने ये दोनों विद्याएं भी खूब बनाई हैं। एक से समय बचता है, दूसरी से समय कटता है। मगर तमाशा देखिये, हमारे प्रारब्ध में कलियुग की ये दोनों विद्याएं नहीं लिखी गईं। न हम साइकिल चला सकते हैं, न बाजा ही बजा सकते हैं। पता नहीं कब से यह धारणा हमारे मन में बैठ गई है कि हम सब-कुछ कर सकते हैं, मगर ये दोनों काम नहीं कर सकते।

शायद 1932 की बात है कि बैठे-बैठे ख्याल आया, चलो साइकिल चलाना सीख लें। और इसकी शुरुआत यों हुई कि हमारे लड़के ने चुपचाप यह विद्या सीख ली और हमारे सामने से सवार होकर निकलने लगा। अब आप से क्या कहें कि लज्जा और घृणा के कैसे-कैसे ख्याल हमारे मन में उठे। सोचा, क्या हमीं जमाने-भर में फिसड्डी रह गए हैं। सारी दुनिया चलाती है। ज़रा-ज़रा से लड़के चलाते हैं। मूर्ख और गंवार चलाते हैं। हम तो परमात्मा की कृपा से फिर भी पढ़े-लिखे हैं। क्या हमीं नहीं चला सकेंगे? आखिर इसमें मुश्किल क्या है? कूदकर चढ़ गए और ताबड़-तोड़ पांव मारने लगे और जब देखा कि कोई राह में खड़ा है तब टन-टन करके घंटी बजा दी। न हटा तो क्रोधपूर्ण आंखों से उसकी तरफ देखते हुए निकल गए। बस, यही तो सारा गुर है इस लोहे की सवारी का! कुछ ही दिनों में सीख लेंगे। बस महाराज! हमने निश्चय कर लिया कि चाहे जो हो जाए, परवाह नहीं।

दूसरे दिन हमने अपने फटे-पुराने कपड़े तलाश किए और उन्हें ले जाकर श्रीमती जी के सामने पटक दिया कि इनकी जरा मरम्मत तो कर दो।

श्रीमती जी ने हमारी तरफ अचरज-भरी दृष्टि से देखा और कहा, "इन कपड़ों में अब जान ही कहां है जो मरम्मत करूं! ये तो फेंक दिए थे। आप कहां से उठा लाए? वहीं जाकर डाल आइए।"

हमने मुस्कराकर श्रीमती जी की तरफ देखा। मुंह से कहा, "तुम हर समय बहस न किया करो। आख़िर मैं इन्हें ढूंढ़-ढांढ़ कर लाया हूं तो ऐसे ही नहीं उठा लाया। कृपा करके इनकी मरम्मत कर डालो।"

मगर श्रीमती जी बोलीं, "पहले बताओ, इनका क्या बनेगा?"

हम चाहते थे कि घर में किसी को कानों-कान खबर न हो और हम साइकिल सवार बन जाएं। और इसके बाद जब इस विद्या के पंडित हो जाएं तो एक दिन जहांगीर के मकबरे को जाने का निश्चय करें। घर वालों को तांगे में बिठा दें और कहें, "तुम चलो, हम दूसरे तांगे पर आते हैं।" जब वे चले जाएं तब साइकिल पर सवार होकर उनको रास्ते में मिलें। हमें साइकिल पर सवार देखकर उन लोगों की क्या हालत होगी! हैरान हो जाएंगे, आंखें मल-मलकर देखेंगे कि कहीं कोई और तो नहीं! परन्तु हम गरदन टेढ़ी करके दूसरी तरफ देखने लग जाएंगे, जैसे हमें कुछ मालूम ही नहीं है, जैसे यह सवारी हमारे लिए साधारण बात है।

झख मारकर बताना पड़ा कि रोज-रोज तांगे का खर्च मारे डालता है। साइकिल चलाना सीखेंगे।

श्रीमती जी ने बच्चे को सुलाते हुए हमारी तरफ देखा और मुस्कराकर बोलीं, "मुझे तो आशा नहीं कि आपसे यह बेल मढ़े चढ़ सके। खैर यत्न कर देखिए। मगर इन कपड़ों का क्या बनेगा?"

हमने जरा रौब से कहा, "आखिर साइकिल से एक-दो बार गिरेंगे या नहीं? और गिरने से कपड़े फटेंगे या नहीं? जो मूर्ख हैं, वे नए कपड़ों का नुकसान कर बैठते हैं। जो बुद्धिमान हैं, वे पुराने कपड़ों से काम चलाते हैं।"

मालूम होता है, हमारी इस युक्ति का जवाब हमारी स्त्री के पास कोई न था, क्योंकि उन्होंने उसी समय मशीन मंगवा कर उन कपड़ों की मरम्मत शुरू कर दी।

इधर हमने बाजार जाकर जंबक के दो डिब्बे खरीद लिए कि चोट लगने पर उसका उसी समय इलाज किया जा सके। इसके बाद जाकर एक खुला मैदान तलाश किया ताकि दूसरे दिन से साइकिल-सवारी का अभ्यास किया जा सके।

अब यह सवाल हमारे सामने था कि अपना उस्ताद किसे बनाएं। इसी उधेड़-बुन में बैठे थे कि तिवारी लक्ष्मीनारायण आ गए और बोले, "क्यों भाई, हो जाए एक बाज़ी शतरंज की?"

हमने सिर हिलाकर जवाब दिया, "नहीं साहब! आज तो जी नहीं चाहता।"

"क्यों?"

"यदि जी न चाहे तो क्या करें?"

यह कहते-कहते हमारा गला भर आया। तिवारी जी का दिल पसीज गया। हमारे पास बैठकर बोले, "अरे भाई, मामला क्या है? स्त्री से झगड़ा तो नहीं हो गया?"

हमने कहा, "तिवारी भैया, क्या कहें? सोचा था, लाओ, साइकिल की

सवारी सीख लें। मगर अब कोई ऐसा आदमी नहीं दिखाई देता जो हमारी सहायता करे। बताओ, है कोई ऐसा आदमी तुम्हारे ख्याल में।''

तिवारी जी ने हमारी तरफ बेबसी की आंखों से ऐसे देखा मानो हमको कोई खजाना मिल रहा है, और वे खाली हाथ रहे जाते हैं। बोले, ''मेरी मानो तो रोग न पालो। अब इस आयु में साइकिल पर चढ़ोगे? और फिर यह भी कोई सवारियों में सवारी है कि डंडे पर उकड़ूं बैठे हैं और पांव चला रहे हैं। अजी लानत भेजो इस ख्याल पर और आओ एक बाज़ी खेलें।''

मगर हमने भी कच्ची गोलियां नहीं खेली थीं। साफ़ समझ गए कि तिवारी ईर्ष्या की आग में फुंका जाता है। मुंह फुलाकर हमने कहा, ''भाई तिवारी, हम तो जरूर सीखेंगे। कोई आदमी बताओ।''

''आदमी तो ऐसा है एक, मगर वह मुफ्त नहीं सिखाएगा। फीस लेगा। दे सकोगे?''

''कितने दिन में सिखा देगा?''

''यही दस-बारह दिनों में।''

''और फीस क्या लेगा हमसे?''

''औरों से पच्चीस लेता है। तुमसे बीस लेगा हमारी खातिर।''

हमने सोचा, दस दिन में सिखाएगा और बीस रुपए फीस लेगा। दस दिन—बीस रुपए। बीस रुपए—दस दिन। अर्थात् दो रुपए रोजाना, अर्थात् साठ रुपए महीना, और वह भी एक-दो घंटों के लिए। ऐसी तीन-चार ट्यूशनें मिल जाएं तो ढाई-तीन सौ रुपया महीना हो गया। हमने तिवारी जी से तो इतना ही कहा कि जाकर मामला तय कर आओ, मगर जी में खुश हो रहे थे कि साइकिल चलाना आ जाए तो एक ट्रेनिंग स्कूल खोल दें और तीन-चार सौ रुपये मासिक कमाने लगें।

इधर तिवारी जी मामला तय करने गए, उधर हमने यह शुभ समाचार जाकर श्रीमती जी को सुना दिया कि कुछ दिनों बाद हम ऐसा स्कूल खोलने वाले हैं जिसमें तीन-चार सौ रुपए महीने की आमदनी होगी।

श्रीमती जी बोलीं, ''तुम्हारी इतनी आयु हो गई, मगर ओछापन न गया। पहले आप तो सीख लो, फिर स्कूल खोल लेना। मैं तो समझती हूं कि तुम सीख ही न सकोगे, दूसरों को सिखाना तो दूर की बात है।''

हमने बिगड़कर कहा, ''यह तुममें बड़ी बुरी आदत है कि हर काम में टोक देती हो। हमसे बड़े-बड़े सीख रहे हैं तो क्या हम न सीख सकेंगे? और पहले तो शायद सीखते या न सीखते, मगर अब जब तुमने टोका है तब जरूर सीखेंगे। तुम भी क्या कहोगी!''

श्रीमती जी बोलीं, ''मैं चाहती हूं तुम हवाई जहाज चलाओ, यह साइकिल क्या चीज है! पर तुम्हारे स्वभाव से डर लगता है। एक बार गिरोगे तो देख लेना, साइकिल वहीं फेंक-फांककर चले आओगे।''

इतने में तिवारी जी ने बाहर से आवाज दी। हमने जाकर देखा तो

उस्ताद साहब खड़े थे। हमने शरीफ़ विद्यार्थियों के समान श्रद्धा से हाथ जोड़कर प्रणाम किया और चुपचाप खड़े हो गए।

तिवारी जी बोले, "यह तो बीस पर मानते ही न थे। बड़ी मुश्किल से मनाया है। पेशगी लेंगे। कहते हैं, पीछे कोई नहीं देता।"

"अरे भई, हम देंगे। दुनिया लाख बुरी है, मगर फिर भी भले आदमियों से खाली नहीं है। यह बीस रुपया तो चीज ही क्या है। हम अपना धर्म लाखों के लिए भी न गंवाएंगे। बस, एक बार हमें साइकिल चलाना सिखा दें, फिर देखें,हम इनकी क्या-क्या सेवा करते हैं।"

मगर उस्ताद साहब नहीं माने, बोले, "फीस पहले लेंगे।"

"और यदि आपने नहीं सिखाया तो?"

"नहीं सिखाया तो फीस लौटा देंगे।"

"और यदि फीस न लौटाई तो?"

इस पर तिवारी जी ने कहा, "अरे साहब! क्या यह तिवारी मर गया है? शहर में रहना हराम कर दूं, बाजार में निकलना बंद कर दूं। फीस लेकर भाग जाना कोई हंसी-खेल है?"

जब हमें विश्वास हो गया कि इसमें कोई धोखा नहीं है तब हमने फीस के रुपये लाकर उस्ताद को भेंट कर दिए और कहा, "उस्ताद, कल सवेरे ही आ जाना। हम तैयार रहेंगे। हमने इस काम के लिए कपड़े भी बनवा लिए हैं। और अगर गिर पड़े तो चोट पर लगाने के लिए जंबक भी खरीद लिया है। और हां, हमारे पड़ोस में जो मिस्त्री रहता है उससे साइकिल भी मांग ली है। आप सवेरे ही चले आएं तो हरि नाम लेकर शुरू कर दें।"

तिवारी जी और उस्ताद ने हमें हर तरह की तसल्ली दी और चले गए। इतने में हमें याद आया कि एक बात कहना भूल गए। नंगे पांव भागे और उन्हें बाजार में जा पकड़ा। वे हैरान थे। हमने हांफते-हांफते कहा, "उस्ताद, हम शहर के पास नहीं सीखेंगे, लारेंस बाग में जो मैदान है, वहां एक तो भूमि नरम है, चोट कम लगती है। दूसरे वहां कोई देखता नहीं है।"

अब रात को आराम की नींद कहां? बार-बार चौंकते थे और देखते थे कि कहीं सूरज तो नहीं निकल आया। सोते थे तो साइकिल के सपने आते थे। एक बार देखा कि हम साइकिल से गिरकर जख्मी हो गए हैं। दूसरी बार देखा कि हम साइकिल पर सवार हैं। साइकिल आप से आप हवा में चल रही है और लोग हमारी तरफ आंखें फाड़-फाड़कर देख रहे हैं।

जब आंखें खुलीं तो दिन निकल आया था। जल्दी से जाकर वे पुराने कपड़े पहन लिए, जंबक का डिब्बा हाथ में ले लिया और नौकर को भेजकर मिस्त्री से साइकिल मंगवा ली। इसी समय उस्ताद साहब भी आ गए और हम भगवान् का नाम लेकर लारेंस बाग की ओर चले। लेकिन अभी घर से निकले ही थे कि बिल्ली रास्ता काट गई, और एक लड़के ने छींक दिया।

क्या कहें हमें कितना क्रोध आया उस नामुराद बिल्ली पर और उस शैतान लड़के पर! मगर क्या करते? दांत पीसकर रह गए। एक बार फिर भगवान का पावन नाम लिया और आगे बढ़े। पर बाजार में पहुंचकर देखा कि हर आदमी जो हमारी तरफ देखता है, मुस्कराता है। अब हम हैरान थे कि बात क्या है। सहसा हमने देखा कि हमने जल्दी और घबराहट में पाजामा और अचकन दोनों उलटे पहन लिए हैं और लोग इसी पर हंस रहे हैं। सिर मुंडाते ही ओले पड़े।

हमने उस्ताद से माफी मांगी और घर लौट आए। अर्थात हमारा पहला दिन मुफ्त में गया।

दूसरे दिन फिर निकले। रास्ते में उस्ताद साहब बोले, "मैं एक गिलास लस्सी पी लूं। आप जरा साइकिल को थामिए।"

उस्ताद साहब लस्सी पीने लगे तो हमने साइकिल के पुर्जों की ऊपर-नीचे से परीक्षा शुरू कर दी। फिर कुछ जी में आया तो उसका हैण्डल पकड़कर जरा चलने लगे। मगर दो ही कदम गए होंगे कि ऐसा मालूम हुआ जैसे साइकिल हमारे सीने पर चढ़ी आती है।

इस समय हमारे सामने यह गंभीर प्रश्न था कि क्या करना चाहिए, युद्ध-क्षेत्र में डटे रहें या हट जाएं? सोच विचार के बाद यही निश्चय किया कि यह लोहे का घोड़ा है। इसके सामने हम क्या चीज हैं? बड़े-बड़े वीर योद्धा भी नहीं ठहर सकते। इसलिए हमने साइकिल छोड़ दी और भगोड़े सिपाही बनकर मुड़ गए। पर दूसरे ही क्षण साइकिल अपने पूरे जोर से हमारे पांव पर गिर गई और हमारी रामदुहाई बाजार के एक सिरे से दूसरे सिरे तक गूंजने लगी। उस्ताद लस्सी छोड़कर दौड़े आए, और दयावान लोग भी जमा हो गए। सबने मिल-मिलाकर हमारा पांव साइकिल से निकाला। भगवान् के एक भक्त ने जंबक का डिब्बा भी उठाकर हमारे हाथ में दे दिया। दूसरे ने हमारी बगलों में हाथ डालकर हमें संभाला और सहानुभूति से पूछा, "चोट तो नहीं आई? जरा दो-चार कदम चलिए नहीं तो लहू जम जाएगा।"

इस तरह दूसरे दिन हम और हमारी साइकिल दोनों अपने घर से थोड़ी दूर पर जख्मी हो गए। हम लंगड़ाते हुए घर लौट आए और साइकिल ठीक होने के लिए मिस्त्री की दुकान पर भेज दी।

मगर हमारे वीर हृदय का साहस और धीरज देखिए। अब भी मैदान में डटे रहे। कई बार गिरे, कई बार शहीद हुए। घुटने तुड़वाए, कपड़े फड़वाए, पर क्या मजाल जो जी छूट जाए। आठ-नौ दिन में साइकिल चलाना सीख गए थे। लेकिन अभी उस पर चढ़ना नहीं आता था। कोई परोपकारी पुरुष सहारा देकर चढ़ा देता तो फिर लिए जाते थे। हमारे आनन्द की कोई सीमा न थी। सोचते थे, मार लिया मैदान हमने! दो-चार दिन में

पूरे मास्टर बन जाएंगे, इसके बाद प्रोफेसर, फिर ट्रेनिंग कॉलेज, और तीन-चार सौ रुपए मासिक। तिवारी जी देखेंगे और ईर्ष्या से जलेंगे।

उस दिन उस्ताद ने हमें साइकिल पर चढ़ा दिया और सड़क पर छोड़ दिया कि ले जाओ, अब तुम सीख गए।

अब हम साइकिल चला रहे थे और दिल ही दिल फूले न समाते थे। मगर हाल यह था कि कोई आदमी दो सौ गज के फ़ासले पर होता तो हम गला फाड़-फाड़कर चिल्लाना शुरू कर देते—साहब! जरा बाईं तरफ हट जाइए। दूर फासले पर कोई गाड़ी दिखाई देती तो हमारे प्राण सूख जाते। उस समय हमारे मन की जो दशा होती उसे परमेश्वर ही जानता है। जब गाड़ी निकल जाती तब कहीं जाकर हमारी जान में जान आती।

सहसा सामने तिवारी जी आते हुए दिखाई दिए। हमने उन्हें भी दूर से ही अल्टीमेटम दे दिया कि तिवारी जी, बाईं तरफ हो जाओ वरना साइकिल तुम्हारे ऊपर चढ़ा देंगे।

तिवारी जी ने अपनी छोटी-छोटी आंखों से हमारी तरफ देखा और मुस्कराकर कहा, "जरा एक बात तो सुनते जाओ।"

हमने एक बार हैण्डल की तरफ, दूसरी बार तिवारी जी की तरफ देखकर ज़वाब दिया, "इस समय बात सुन सकते हैं? देखते नहीं हो, साइकिल पर सवार हैं।"

तिवारी जी बोले, "तो क्या जो साइकिल चलाते हैं, वे किसी की बात नहीं सुनते हैं? बड़ी जरूरी बात है, जरा उतर जाओ।"

हमने लड़खड़ाती हुई साइकिल को संभालते हुए जवाब दिया, "उतर जाएं तो फिर चढ़ाएगा कौन? अभी चलाना सीखा है, चढ़ना नहीं सीखा।"

तिवारी जी चिल्लाते ही रह गए, हम आगे निकल गए।

इतने में सामने से एक तांगा आता नजर पड़ा। हमने उसे भी दूर से डांट दिया, "बाईं तरफ भाई। अभी नए चलाने वाले हैं।"

तांगा बाईं तरफ हो गया। हम अपने रास्ते पर चले जा रहे थे। एकाएक पता नहीं घोड़ा भड़क उठा या तांगेवाले को शरारत सूझी, जो भी हो, तांगा हमारे सामने आ गया। हमारे हाथ-पांव फूल गए। जरा-सा हैण्डल घुमा देते तो हम दूसरी तरफ निकल जाते। मगर बुरा समय आता है तो बुद्धि पहले ही भ्रष्ट हो जाती है। उस समय हमें ख्याल ही न आया कि हैण्डल घुमाया भी जा सकता है। फिर क्या था, हम और हमारी साइकिल दोनों ही तांगे के नीचे आ गए और हम बेहोश हो गए।

जब हम होश में आए तब हम अपने घर में थे और हमारी देह पर कितनी ही पट्टियां बंधी थीं। हमें होश में देखकर श्रीमती जी ने कहा, "क्यों? अब क्या हाल है? मैं कहती न थी, साइकिल चलाना न सीखो! उस समय तो किसी की सुनते ही न थे।"

हमने सोचा, लाओ सारा इलज़ाम तिवारी जी पर लगा दें और आप साफ बच जाएं। बोले, "यह सब तिवारी जी की शरारत है।"

श्रीमती जी ने मुस्कराकर जवाब दिया, "यह तो तुम उसे चकमा दो जो कुछ जानता न हो। उस तांगे पर मैं ही तो बच्चों को लेकर घूमने निकली थी कि चलो सैर भी कर आएंगे और तुम्हें साइकिल चलाते भी देख आएंगे!"

हमने निरुत्तर होकर आंखें बन्द कर लीं।

उस दिन के बाद फिर कभी हमने साइकिल को हाथ नहीं लगाया।

प्रश्न अभ्यास

(1) लेखक साइकिल चलाना सीखने के लिए क्यों उत्सुक था?

(2) नीचे लिखा वाक्य पढ़कर प्रश्नों के उत्तर दो।

"झख मारकर बताना पड़ा कि रोज-रोज तांगे का खर्च मारे डालता है।"

(क) तांगे के खर्च से बचने का क्या उपाय था?

(ख) झख मार कर यह बात किसने, किसे बताई? लेखक ने अपनी पत्नी को

(ग) लेखक साइकिल चलाना सीखने की बात किसी को क्यों नहीं बताना चाहता था?

(घ) मगर पत्नी को यह रहस्य क्यों बताना पड़ा?

(ङ) साइकिल चलाना सीखने से पहले लेखक ने क्या-क्या काम किए?

(च) क्या लेखक तांगे का रोज-रोज का खर्च बचा सका? नहीं

(3) तिवारी ने यह क्यों कहा कि मेरी मानो तो रोग न पालो?

सही उत्तर पर √ लगाओ।

(क) तिवारी नहीं चाहते थे कि लेखक साइकिल चलाना सीख जाए।

(ख) तिवारी ईर्ष्यालु थे।

(ग) तिवारी लेखक के हितचिंतक थे। √

(घ) तिवारी को साइकिल चलाने से घृणा थी।

(4) नीचे लिखा वाक्य पढ़कर प्रश्नों के उत्तर दो।

"मैं तो चाहती हूं कि तुम हवाई जहाज़ चलाओ, यह साइकिल क्या चीज़ है!"

(क) लेखक की पत्नी ने यह वाक्य लेखक से क्यों कहा?

(ख) यह वाक्य व्यंग्य में बोला गया है अथवा प्रोत्साहन देने के लिए?

(ग) क्या लेखक को साइकिल चलाना आ गया?

(घ) लेखक ने तिवारी जी से कौन-सा मामला तय कर आने को कहा था?

(5) तिवारी कौन थे? लेखक के अनुसार वे कैसे व्यक्ति थे?

(6) उस्ताद ने यह विद्या सिखाने के लिए कितने रुपए लिए?

(7) लेखक ने जम्बक क्यों खरीदा था?

(8) साइकिल चलाना सीखने के पहले ही दिन कौन-सी घटना घटी?

(9) साइकिल का प्रबंध कहां से किया गया?

(10) तिवारी के आवाज देने पर भी लेखक ने साइकिल क्यों नहीं रोकी?

(11) नीचे लिखे वाक्य पढ़कर प्रश्नों के उत्तर दो।
"उसको चकमा दो, जो जानता न हो।"

(क) यह बात किसने, किससे, कब कही?

(ख) लेखक ने पत्नी को कैसे चकमा देना चाहा?

(ग) लेखक को क्या हुआ था? उनके शरीर की दशा कैसी थी?

(घ) लेखक की पत्नी इस घटना के रहस्य को कैसे जानती थी?

(ङ) लेखक निरुत्तर क्यों रह गया?

(च) लेखक की कौन-सी तीव्र इच्छा मन में ही रह गई?

(12) लेखक के झूठ की पोल किस प्रकार खुल गई?

(13) नीचे लिखे अवतरण को पढ़कर इसमें आए मुहावरों को रेखांकित करो। ध्यान दो कि प्रेमचंद की तरह सुदर्शन भी मुहावरेदार भाषा लिखते हैं।
"मगर हमने भी कच्ची गोलियां नहीं खेली थीं। साफ़ समझ गए कि तिवारी ईर्ष्या की आग में फुंका जाता है। मुंह फुलाकर हमने जो कहा, वह कहते-कहते हमारा गला भर आया। तिवारी जी का दिल पसीज गया।"

पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र'

पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' का जन्म सन् 1900 में मिर्ज़ापुर ज़िले के चुनार नामक कस्बे में हुआ था। इनके पिता की मृत्यु इनकी बाल्यावस्था में ही हो गई थी, अतः परिस्थितिवश इनकी पढ़ाई अधिक न हो पाई। प्रारम्भिक शिक्षा इन्होंने चुनार के चर्च मिशन स्कूल और वाराणसी के सेंट्रल हिन्दू स्कूल में प्राप्त की। छोटी उम्र में ही इन्होंने रामलीला मंडलियों के साथ देश के अनेक भागों में भ्रमण किया जिससे जीवन की वास्तविक पाठशाला में ही इनकी असली शिक्षा हुई। इस भ्रमण में ही इन्होंने समाज को निकट से देखा-परखा और विविध अनुभव प्राप्त किए। स्वभाव से ये अलमस्त और फक्कड़ थे। सन् 1920 से ये '**आज**' दैनिक में लिखने लगे जिससे इनके पत्रकार जीवन का प्रारम्भ हुआ। ये बम्बई के सिनेमा जगत में भी काफी दिनों तक रहे। कलकत्ते के मारवाड़ी समाज को भी इन्होंने निकट से देखा। सन् 1967 में दिल्ली में इनकी मृत्यु हुई।

उग्र जी ने यथार्थवादी कथा – लेखन किया है। उन्होंने सौ से भी अधिक कहानियां लिखी हैं। इनके कहानी-संग्रहों के नाम हैं — ***'पंजाब की महारानी', 'रेशमी', 'पोली इमारत', 'काल कोठरी', 'कला का पुरस्कार', 'यह कंचन सी काया', 'चित्र विचित्र', 'ऐसी होली खेलो लाल', 'फागुन के दिन चार'*** आदि। इन्होंने अनेक उपन्यास भी लिखे जो अत्यंत लोकप्रिय सिद्ध हुए। इनके प्रमुख उपन्यास हैं— ***'बुधुआ की बेटी', 'दिल्ली का दलाल', 'मनुष्यानंद', 'चंद हसीनों के खतूत'*** आदि। इन्होंने ***'अपनी खबर'*** नाम से आत्मकथा भी लिखी थी। ***'महात्मा ईसा'*** नामक इनका लिखा नाटक भी महत्वपूर्ण है।

उग्र जी ने अपनी रचनाओं में अंधविश्वासों और सामाजिक भ्रष्टाचार का जमकर विरोध किया। उच्च वर्ग के मिथ्या आदर्शों और शोषक महाजनों का पर्दाफाश करने में ये सदैव आगे रहे। इनकी रचनाओं की सर्वाधिक प्रमुख विशेषता उनमें निहित यथार्थ और व्यंग्य है। जीवन और समाज की यथार्थ अभिव्यक्ति ही इनके लेखन का प्रमुख उद्देश्य था।

'उसकी माँ' उग्र जी की महत्वपूर्ण कहानी है। यह भारत की आज़ादी के आंदोलन से अनुप्रेरित् है। इसमें कुछ क्रांतिकारी युवकों द्वारा देश की स्वाधीनता के लिए किए गए बलिदान का मार्मिक चित्रण है। लाल की माँ भारत माता की प्रतीक है। उसमें माँ की अपार ममता और अबोध विश्वास है। इस कहानी की भाषा सरल, व्यावहारिक और सहज है। भावों को मूर्तिमंत करने में इसकी भाषा अत्यधिक सजीव और सशक्त कही जा सकती है। इस कहानी को पढ़ते समय पाठक को मैक्सिम गोर्की की ***'माँ'*** पुस्तक की याद बराबर आती है।

उसकी माँ

दोपहर को ज़रा आराम करके उठा था। अपने पढ़ने-लिखने के कमरे में खड़ा-खड़ा धीरे-धीरे सिगार पी रहा था और बड़ी-बड़ी अलमारियों में सजी पुस्तकों की ओर निहार रहा था। किसी महान् लेखक की कोई महान् कृति उनमें से निकालकर देखने की बात सोच रहा था। मगर पुस्तकालय के एक सिरे से लेकर दूसरे सिरे तक मुझे महान्-ही-महान् नजर आए। कहीं गेटे, कहीं रूसो, कहीं मेज्ज़िनी, कहीं नीत्शे, कहीं शैक्सपियर, कहीं टाल्स्टाय, कहीं ह्यूगो, कहीं मोपासाँ, कहीं डिकेन्स, स्पेन्सर, मेकाले, मिल्टन, मोलियर उफ! इधर से उधर तक एक-से-एक महान् ही तो थे। आखिर मैं किसके साथ चंद मिनट मन बहलाव करूँ, यह निश्चय ही न हो सका, महानों के नाम ही पढ़ते-पढ़ते परेशान सा हो गया।

इतने में मोटर की पों-पों सुनाई पड़ी। खिड़की से झाँका तो सुरमई रंग की कोई 'फिएट' गाड़ी दिखाई पड़ी। मैं सोचने लगा— शायद कोई मित्र पधारे हैं, अच्छा ही है। महानों से जान बची।

जब नौकर ने सलाम कर आने वाले का कार्ड दिया, तब मैं कुछ घबराया। उस पर शहर के पुलिस सुपरिंटेंडेंट का नाम छपा था। ऐसे बेवक्त वे कैसे आए?

पुलिस-पति भीतर आए। मैंने हाथ मिलाकार, चक्कर खाने वाली एक गद्दीदार कुरसी पर उन्हें आसन दिया। वे व्यापारिक मुस्कराहट से लैस होकर बोले, ''अचानक आगमन के लिए आप मुझे क्षमा करें।''

''आज्ञा हो!'' मैंने भी नम्रता से कहा।

उन्होंने पाकेट से डायरी निकाली, डायरी से एक तस्वीर। बोले, ''देखिए इसे, ज़रा बताइए तो, आप पहचानते हैं इसको?''

''हाँ पहचानता तो हूँ।'' ज़रा सहमते हुए मैंने बताया।

''इसके बारे में मुझे आपसे कुछ पूछना है।''

''पूछिए।''

''इसका नाम क्या है?''

''लाल! मैं इसी नाम से बचपन ही से इसे पुकारता आ रहा हूँ। मगर, यह पुकारने का नाम है। एक नाम कोई और है, सो मुझे स्मरण नहीं।''

''कहाँ रहता है यह?'' सुपरिंटेंडेंट ने पुलिस की धूर्त दृष्टि से मेरी ओर देखकर पूछा।

''मेरे बंगले के ठीक सामने एक दोमंजिला, कच्चा-पक्का घर है, उसी में वह रहता है। वह है और उसकी बूढ़ी माँ।''

''बूढ़ी का नाम क्या है?''

''जानकी।''

'' और कोई नहीं है क्या इसके परिवार में? दोनों का पालन-पोषण कौन करता है?''

''सात-आठ वर्ष हुए, लाल के पिता का देहांत हो गया। अब उस परिवार में वह और उसकी माता ही बचे हैं। उसका पिता जब तक जीवित रहा, बराबर मेरी ज़मींदारी का मुख्य मैनेजर रहा। उसका नाम रामनाथ था। वही मेरे पास कुछ हजार रुपए जमा कर गया था, जिससे अब तक उनका खर्चा चल रहा है। लड़का कालेज में पढ़ रहा है। जानकी को आशा है, वह साल-दो-साल बाद कमाने और परिवार को सँभालने लगेगा। मगर क्षमा कीजिए, क्या मैं यह पूछ सकता हूँ कि आप उसके बारे में क्यों इतनी पूछताछ कर रहे हैं?''

''यह तो मैं आपको नहीं बता सकता, मगर इतना आप समझ लें, यह सरकारी काम है। इसीलिए आज मैंने आपको इतनी तकलीफ दी है।''

''अजी, इसमें तकलीफ की क्या बात है। हम तो सात पुश्त से सरकार के फरमाबरदार हैं। और कुछ आज्ञा....''

''एक बात और'' पुलिस-पति ने गंभीरतापूर्वक धीरे से कहा, ''मैं मित्रता से आपसे निवेदन करता हूँ, आप इस परिवार से ज़रा सावधान और दूर रहें। फ़िलहाल इससे अधिक मुझे कुछ कहना नहीं।''

''लाल की माँ!'' एक दिन जानकी को बुलाकर मैंने समझाया, ''तुम्हारा लाल आजकल क्या पाजीपन करता है? तुम उसे केवल प्यार ही करती हो न! हूँ! भोगोगी!''

''क्या है, बाबू?'' उसने कहा।

''लाल क्या करता है?''

''मैं तो उसे कोई भी बुरा काम करते नहीं देखती।''

''बिना किए ही तो सरकार किसी के पीछे पड़ती नहीं। हाँ, लाल की माँ! बड़ी धर्मात्मा, विवेकी और न्यायी सरकार है यह। जरूर तुम्हारा लाल कुछ करता होगा।''

''माँ! माँ!'' पुकारता हुआ उसी समय लाल भी आया— लंबा, सुडौल, सुन्दर, तेजस्वी।

''माँ!!'' उसने मुझे नमस्कार कर जानकी से कहा, ''तू यहाँ भाग आई

है। चल तो! मेरे कई सहपाठी वहाँ खड़े हैं, उहें चटपट कुछ जलपान करा दे, फिर हम घूमने जाएँगे!''

''अरे!'' जानकी के चेहरे की झुर्रियाँ चमकने लगीं, काँपने लगीं, उसे देखकर बोली, ''तू आ गया लाल! चलती हूँ, भैया! पर, देख तो, तेरे चाचा क्या शिकायत कर रहे हैं? तू क्या पाजीपना करता है बेटा!''

''क्या है, चाचा जी?'' उसने सविनय, सुमधुर स्वर में मुझसे पूछा, ''मैंने क्या अपराध किया है?''

''मैं तुमसे नाराज़ हूँ लाल!'' मैंने गंभीर स्वर में कहा।

''क्यों, चाचा जी?''

''तुम बहुत बुरे होते जा रहे हो, जो सरकार के विरुद्ध षड्यंत्र करने वालों के साथी हो। हाँ, तुम हो! देखो लाल की माँ, इसके चेहरे का रंग उड़ गया, यह सोचकर कि यह खबर मुझे कैसे मिली।''

सचमुच एक बार उसका खिला हुआ रंग जरा मुरझा गया, मेरी बातों से। पर तुरन्त ही वह सँभला।

''आपने गलत सुना, चाचा जी। मैं किसी षड्यंत्र में नहीं, हाँ, मेरे विचार स्वतंत्र अवश्य हैं, मैं ज़रूरत-बेज़रूरत जिस-तिस के आगे उबल अवश्य उठता हूँ देश की दुरवस्था पर, उबल उठता हूँ इस पशु-हृदय परतंत्रता पर।''

''तुम्हारी ही बात सही, तुम षड्यंत्र में नहीं, विद्रोह में नहीं, पर यह बक-बक क्यों? इससे फायदा? तुम्हारी इस बक-बक से न तो देश की दुर्दशा दूर होगी और न उसकी पराधीनता। तुम्हारा काम पढ़ना है, पढ़ो। इसके बाद कर्म करना होगा, परिवार और देश की मर्यादा बचानी होगी। तुम पहले अपने घर का उद्धार तो कर लो, तब सरकार के सुधार का विचार करना।''

उसने नम्रता से कहा, ''चाचा जी, क्षमा कीजिए। इस विषय में मैं आपसे विवाद करना नहीं चाहता।''

'' चाहना होगा, विवाद करना होगा। मैं केवल चाचा जी नहीं, तुम्हारा बहुत-कुछ हूँ। तुम्हें देखते ही मेरी आँखों के सामने रामनाथ नाचने लगते हैं, तुम्हारी बूढ़ी माँ घूमने लगती है। भला मैं तुम्हें बेहाथ होने दे सकता हूँ! इस भरोसे न रहना।''

''इस पराधीनता के विवाद में चाचा जी, मैं और आप दो भिन्न सिरों पर हैं। आप कट्टर राजभक्त, मैं कट्टर राजविद्रोही। आप पहली बात को उचित समझते हैं—कुछ कारणों से, मैं दूसरी को—दूसरे कारणों से—आप अपना पथ छोड़ नहीं सकते— अपनी प्यारी कल्पनाओं के लिए— मैं अपना भी नहीं छोड़ सकता।''

''तुम्हारी कल्पनाएँ क्या हैं, सुनूँ तो? ज़रा मैं भी जान लूँ कि अबके

लड़के कालेज की गर्दन तक पहुँचते-पहुँचते कैसे-कैसे हवाई किले उठाने के सपने देखने लगते हैं। जरा मैं भी तो सुनूँ बेटा।''

''मेरी कल्पना यह है कि जो व्यक्ति समाज या राष्ट्र के नाश पर जीता हो, उसका सर्वनाश हो जाए!''

जानकी उठकर बाहर चली, ''अरे! तू तो जमकर चाचा से जूझने लगा। वहाँ चार बच्चे बेचारे दरवाज़े पर खड़े होंगे। लड़ तू, मैं जाती हूँ।'' उसने मुझ से कहा, ''समझा दो बाबू, मैं तो आप ही कुछ नहीं समझती, फिर इसे क्या समझाऊँगी!'' उसने फिर लाल की ओर देखा, ''चाचा जो कहें, मान जा बेटा। यह तेरे भले ही की कहेंगे।''

वह बेचारी कमर झुकाए, उस साठ बरस की वय में भी घूँघट सँभाले चली गई। उस दिन उसने मेरी और लाल की बातों की गम्भीरता नहीं समझी।

''मेरी कल्पना यह है कि,'' उत्तेजित स्वर में लाल ने कहा, ''ऐसे दुष्ट, व्यक्ति-नाशक राज के सर्वनाश में मेरा भी हाथ हो।''

''तुम्हारे हाथ दुर्बल हैं उनसे जिनसे तुम पंजा लेने जा रहे हो, चर्र-मर्र हो उठेंगे, नष्ट हो जाएँगे।''

''चाचा जी, नष्ट हो जाना तो यहाँ का नियम है। जो सँवारा गया है, वह बिगड़ेगा ही। हमें दुर्बलता के डर से अपना काम नहीं रोकना चाहिए। कर्म के समय हमारी भुजाएँ दुर्बल नहीं, भगवान की सहस्त्र भुजाओं की सखियाँ हैं।''

''तो तुम क्या करना चाहते हो?''

'जो भी मुझ से हो सकेगा, करूँगा।''

''षड्यंत्र?''

''जरूरत पड़ी तो जरूर।''

''विद्रोह?''

''हाँ, अवश्य।''

''हत्या?''

''हाँ, हाँ, हाँ!''

''बेटा, तुम्हारा माथा न जाने कौन-सी किताब पढ़ते-पढ़ते बिगड़ रहा है। सावधान!''

मेरी धर्मपत्नी और लाल की माँ एक दिन बैठी हुई बातें कर रही थीं कि मैं पहुँच गया। कुछ पूछने केलिए कई दिनों से मैं उसकी तलाश में था।

''क्यों लाल की माँ, लाल के साथ किसके लड़के आते हैं तुम्हारे घर में?''

''क्या जानूँ बाबू!''उसने सरलता से कहा, ''मगर वे सभी मेरे लाल ही

की तरह प्यारे मुझे दिखते हैं। सब लापरवाह। वे इतना हँसते, गाते और हो-हल्ला मचाते हैं कि मैं मुग्ध हो जाती हूँ।''

मैंने एक ठंडी साँस ली, ''हूँ, ठीक कहती हो। वे बातें कैसी करते हैं, कुछ समझ पाती हो?''

''बाबू, वे लाल की बैठक में बैठते हैं। कभी-कभी जब मैं उन्हें कुछ खिलाने-पिलाने जाती हूँ, तब वे बड़े प्रेम से मुझे 'माँ' कहते हैं। मेरी छाती फूल उठती है मानो वे मेरे ही बच्चे हैं।''

''हूँ'' मैंने फिर साँस ली।

''एक लड़का उनमें बहुत ही हँसोड़ है। खूब तगड़ा और बली दिखता है। लाल कहता था, वह डंडा लड़ने में, दौड़ने में, घूँसेबाजी में, छेड़खानी करने और हो-हो, हा-हा कर हँसने में समूचे कालेज में फर्स्ट है। उसी लड़के ने एक दिन, जब मैं उन्हें हलवा परस रही थी, मेरे मुँह की ओर देखकर कहा, 'माँ! तू तो ठीक भारत माता-सी लगती है। तू बूढ़ी, वह बूढ़ी। उसका उजला हिमालय है, तेरे केश। हाँ, नक्शे से साबित करता हूँ तू भारत माता है। सिर तेरा हिमालय, माथे की दोनों गहरी बड़ी रेखाएँ गंगा और यमुना, यह नाक विन्ध्याचल, ठोड़ी कन्याकुमारी तथा छोटी-बड़ी झुर्रियाँ-रेखाएँ भिन्न-भिन्न पहाड़ और नदियाँ हैं। जरा पास आ मेरे। तेरे केशों को पीछे से आगे बाएँ कँधे पर लहरा दूँ, वह बर्मा बन जाएगा। बिना उसके भारत माता का श्रृंगार शुद्ध न होगा।''

जानकी उस लड़के की बातें सोच गद्‌गद् हो उठी, ''बाबू, ऐसा ढीठ लड़का! सारे बच्चे हँसते रहे और उसने मुझे पकड़, मेरे बालों को बाहर कर अपना बर्मा तैयार कर लिया!''

उसकी सरलता मेरी आँखों में आँसू बनकर छा गई। मैंने पूछा, ''लाल की माँ, और भी वे कुछ बातें करते हैं? लड़ने की, झगड़ने की, गोली या बन्दूक की?''

''अरे बाबू'' उसने मुस्कराकर कहा, ''वे सभी बातें करते हैं। उनकी बातों का कोई मतलब थोड़े ही होता है। सब जवान हैं, लापरवाह हैं। जो मुँह में आता है, बकते हैं। कभी-कभी तो पागल-सी बातें करते हैं। महीना-भर पहले एक दिन लड़के बहुत उत्तेजित थे। न जाने कहाँ, लड़कों को सरकार पकड़ रही है। मालूम नहीं, पकड़ती भी है या वे यों ही गप हाँकते थे। मगर उस दिन वे यही बक रहे थे, 'पुलिसवाले केवल संदेह पर भले आदमियों के बच्चों को त्रास देते हैं, मारते हैं, सताते हैं। यह अत्याचारी पुलिस की नीचता है। ऐसी नीच शासन-प्रणाली को स्वीकार करना अपने धर्म को, कर्म को, आत्मा को, परमात्मा को भुलाना है। धीरे-धीरे घुलाना-मिटाना है।'

''एक ने उत्तेजित भाव से कहा, 'अजी, ये परदेसी कौन लगते हैं हमारे,

जो बरबस राजभक्त बनाए रखने के लिए हमारी छाती पर तोप का मुँह लगाए अड़े और खड़े हैं। उफ! इस देश के लोगों के हिये की आँखें मुँद गई हैं। तभी तो इतने जुल्मों पर भी आदमी आदमी से डरता है। ये लोग शरीर की रक्षा के लिए अपनी-अपनी आत्मा की चिता सँवारते फिरते हैं। नाश हो इस परतंत्रतावाद का!'

"दूसरे ने कहा, 'लोग ज्ञान न पा सकें, इसलिए इस सरकार ने हमारे पढ़ने-लिखने के साधनों को अज्ञान से भर रखा है। लोग वीर और स्वाधीन न हो सकें, इसलिए अपमानजनक और मनुष्यताहीन नीति-मर्दक कानून गढ़े हैं। गरीबों को चूसकर, सेना के नाम पर पले हुए पशुओं को शराब से, क़बाब से, मोटा-ताजा रखती है यह सरकार। धीरे-धीरे जोंक की तरह हमारे देश का धर्म, प्राण और धन चूसती चली जा रही है यह शासन-प्रणाली!"

"ऐसे ही अंट-संट ये बातूनी बका करते हैं बाबू। जभी चार छोकरे जुटे, तभी यही चर्चा। लाल के साथियों का मिज़ाज भी उसी-सा अल्हड़-बिल्हड़ मुझे मालूम पड़ता है। ये लड़के ज्यों-ज्यों पढ़ते जा रहे हैं, त्यों-तयों बक-बक में बढ़ते भी जा रहे हैं।"

"यह बुरा है, लाल की माँ!" मैंने गहरी साँस ली।

जमींदारी के कुछ जरूरी काम से चार-पाँच दिनों के लिए बाहर गया था। लौटने पर बंगले में घुसने के पूर्व लाल के दरवाजे पर जो नज़र पड़ी तो वहाँ एक भयानक सन्नाटा सा नज़र आया—जैसे घर उदास हो, रोता हो।

भीतर आने पर मेरी धर्मपत्नी मेरे सामने उदास मुख खड़ी हो गई।

"तुमने सुना?"

"नहीं तो, कौन-सी बात?"

"लाल की माँ पर भयानक विपत्ति टूट पड़ी है।"

मैं कुछ-कुछ समझ गया, फिर भी विस्तृत विवरण जानने को उत्सुक हो उठा, "क्या हुआ? ज़रा साफ़-साफ़ बताओ।"

"वही हुआ जिसका तुम्हें भय था। कल पुलिस की एक पल्टन ने लाल का घर घेर लिया था। बारह घंटे तक तलाशी हुई। लाल, उसके बारह-पन्द्रह साथी, सभी पकड़ लिए गए हैं। सभी लड़कों के घरों की तलाशी हुई है। सबके घरों से भयानक-भयानक चीजें निकली हैं।"

"लाल के यहाँ?"

"उसके यहाँ भी दो पिस्तौल, बहुत-से कारतूस और पत्र पाए गए हैं। सुना है, उन पर हत्या, षड्यंत्र, सरकारी राज्य उलटने की चेष्टा आदि अपराध लगाए गए हैं।"

"हूँ," मैंने ठंडी साँस ली, "मैं तो महीनों से चिल्ला रहा था कि वह

लौंडा धोखा देगा। अब यह बूढ़ी बेचारी मरी। वह कहाँ है? तलाशी के बाद तुम्हारे पास आई थी?''

''जानकी मेरे पास कहाँ आई! बुलवाने पर भी कल नकार गई। नौकर से कहलाया, 'पराँठे बना रही हूँ; हलवा तरकारी अभी बनाना है, नहीं तो, वे बिल्हड़ बच्चे हवालात में मुरझा न जाएँगे! जेलवाले और उत्साही बच्चों की दुश्मन यह सरकार उन्हें भूखों मार डालेगी। मगर मेरे जीते-जी यह नहीं होने का।''

''वह पागल है, भोगेगी,'' मैं दुख से टूटकर चारपाई पर गिर पड़ा। मुझे लाल के कर्मों पर घोर खेद हुआ।

इसके बाद प्रायः एक वर्ष तक वह मुकदमा चला। कोई भी अदालत के कागज उलटकर देख सकता है सी.आई.डी. ने और उसके प्रमुख सरकारी वकील ने उन लड़कों पर बड़े-बड़े दोषारोपण किए। उन्होंने चारों ओर गुप्त समितियाँ कायम की थीं, खर्चे और प्रचार के लिए डाके डाले थे, सरकारी अधिकारियों के यहाँ रात में छापा मारकर शस्त्र एकत्र किए थे, पलटन में उन्होंने बगावत फैलाने का प्रयत्न किया था। उन्होंने न जाने किस पुलिस के दारोगा को मारा था, और न जाने कहाँ, न जाने किस पुलिस सुपरिंटेंडेंट को। ये सभी बातें सरकार की ओर से प्रमाणित की गईं।

इधर उन लड़कों की पीठ पर कौन था! प्रायः कोई नहीं। सरकार के डर के मारे पहले तो कोई वकील ही उन्हें नहीं मिल रहा था, फिर एक बेचारा मिला भी, तो 'नहीं' का भाई। हाँ, उनकी पैरवी में सबसे अधिक परेशान वह बूढ़ी रहा करती। वह लोटा, थाली, जेवर आदि बेच-बेचकर सुबह-शाम उन बच्चों को भोजन पहूँचाती। फिर वकीलों के यहाँ जाकर दाँत निपोरती, गिड़गिड़ाती, कहती, ''सब झूठ है। न जाने कहाँ से, पुलिसवालों ने ऐसी-ऐसी चीजें हमारे घरों से पैदा कर दी हैं। वे लड़के केवल बातूनी हैं। हाँ, मैं भगवान का चरण छूकर कह सकती हूँ, तुम जेल में जाकर देख आओ, वकील बाबू। भला, फूल-से बच्चे हत्या कर सकते हैं?''

उसका तन सूखकर काँटा हो गया, कमर झुककर धनुष-सी हो गई, आँखें निस्तेज, मगर उन बच्चों के लिए दौड़ना, 'हाय-हाय' करना उसने बंद न किया। कभी-कभी सरकारी नौकर, पुलिस या वार्डर झुँझलाकर उसे झिड़क देते, धकिया देते।

उसको अन्त तक यह विश्वास रहा कि यह सब पुलिस की चालबाजी है। अदालत में जब दूध का दूध और पानी का पानी किया जाएगा तब वे बच्चे जरूर बेदाग छूट जाएँगे। वे फिर उसके घर में लाल के साथ आएँगे। उसे 'माँ' कहकर पुकारेंगे।

मगर उस दिन उसकी कमर टूट गई, जिस दिन ऊँची अदालत ने भी

लाल को, उस बंगड़ लठैत को तथा दो और लड़कों को फाँसी और दस को दस वर्ष से सात वर्ष तक की कड़ी सज़ाएँ सुना दीं।

वह अदालत के बाहर झुकी खड़ी थी। बच्चे बेड़ियाँ बजाते, मस्ती से झूमते बाहर आए। सबसे पहले उस बंगड़ की नज़र उस पर पड़ी।

"माँ!" वह मुस्कराया, "अरे, हमें तो हलवा खिला-खिलाकर तूने गधे-सा तगड़ा कर दिया है, ऐसा कि फाँसी की रस्सी टूट जाए और हम अमर के अमर बने रहें। मगर तू स्वयं सूख कर काँटा हो गई है! क्यों पगली, तेरे लिए घर में खाना नहीं है क्या?"

"माँ!" उसके लाल ने कहा, "तू भी जल्द वहीं आना जहाँ हम लोग जा रहे हैं। यहाँ से थोड़ी ही देर का रास्ता है, माँ! एक साँस में पहुँचेगी। वहीं हम स्वतन्त्रता से मिलेंगे, तेरी गोद में खेलेंगे। तुझे कंधे पर उठाकर इधर से उधर दौड़ते फिरेंगे। समझती है? वहाँ बड़ा आनन्द है।"

"आएगी न माँ?" बंगड़ ने पूछा।

"आएगी न माँ?" लाल ने पूछा।

"आएगी न माँ?" फाँसी-दंड-प्राप्त दो दूसरे लड़कों ने भी पूछा।

और वह टुकुर-टुकुर उनका मुँह ताकती रही। "तुम कहाँ जाओगे पगलो?"

ज़ब से लाल और उसके साथी पकड़े गए, तब से शहर या मुहल्ले का कोई भी आदमी लाल की माँ से मिलने से डरता था। उसे रास्ते में देखकर जाने-पहचाने बगलें झाँकने लगते। मेरा स्वयं अपार प्रेम था उस बेचारी बूढ़ी पर, मगर मैं भी बराबर दूर ही रहा। कौन अपनी गर्दन मुसीबत में डालता, विद्रोही की माँ से सम्बन्ध रखकर?

उस दिन ब्यालू करने के बाद कुछ देर के लिए पुस्तकालय वाले कमरे में गया, किसी महान् लेखक की कोई महान् कृति क्षण-भर देखने के लालच से। मैंने मेज़िनी की एक जिल्द निकालकर उसे खोला। पहले पन्ने पर पेंसिल की लिखावट देखकर चौंका। ध्यान देने पर पता चला, वे लाल के हस्ताक्षर थे। मुझे याद पड़ गई। तीन वर्ष पूर्व उस पुस्तक को मुझसे माँगकर उस लड़के ने पढ़ा था।

एक बार मेरे मन में बड़ा मोह उत्पन्न हुआ उस लड़के के लिए। उसके पिता रामनाथ की दिव्य और स्वर्गीय तस्वीर मेरी आँखों के आगे नाच गई। लाल की माँ पर उसके सिद्धान्तों, विचारों या आचरणों के कारण जो वज्रपात हुआ था उसकी एक ठेस मुझे भी, उसके हस्ताक्षर को देखते ही लगी। मेरे मुँह से एक गंभीर, लाचार, दुर्बल साँस निकलकर रह गई।

पर, दूसरे ही क्षण पुलिस सुपरिटेंडेंट का ध्यान आया। उसकी भूरी, डरावनी, अमानवी आँखें मेरी 'आप सुखी तो जग सुखी' आँखों में वैसे ही चमक गईं, जैसे ऊजड़ गाँव के सिवान में कभी-कभी भुतही चिनगारी

चमक जाया करती है। उसके रूखे फौलादी हाथ, जिनमें लाल की तस्वीर थी, मानो मेरी गर्दन नापने लगे। मैं मेज पर से रबर (इरेज़र) उठा कर उस पुस्तक पर से उसका नाम उधेड़ने लगा।

उसी समय मेरी पत्नी के साथ लाल की माँ वहाँ आई। उसके हाथ में एक पत्र था।

"अरे!" मैं अपने को रोक न सका, "लाल की माँ! तुम तो बिल्कुल पीली पड़ गई हो। तुम इस तरह मेरी ओर निहारती हो, मानो कुछ देखती ही नहीं हो। यह हाथ में क्या है?"

उसने चुपचाप पत्र मेरे हाथ में दे दिया। मैंने देखा, उस पर जेल की मुहर थी। सजा सुनाने के बाद वह वहीं भेज दिया गया, यह मुझे मालूम था।

मैं पत्र निकालकर पढ़ने लगा, वह उसकी अंतिम चिट्ठी थी। मैंने कलेजा थाम कर उसे ज़ोर से पढ़ दिया :

"माँ!

जिस दिन तुम्हें यह पत्र मिलेगा उसके ठीक सवेरे मैं बाल अरुण के किरण-पथ पर चढ़कर उस ओर चला जाऊँगा। मैं चाहता तो अंत समय तुमसे मिल सकता था, मगर इससे क्या फ़ायदा! मुझे विश्वास है, तुम मेरी जन्म-जन्मांतर की जननी ही रहोगी। मैं तुमसे दूर कहाँ जा सकता हूँ! माँ! जब तक पवन साँस लेता है, सूर्य चमकता है, समुद्र लहराता है, तब तक कौन मुझे तुम्हारी करुणामयी गोद से दूर खींच सकता है?

दिवाकर थमा रहेगा, अरुण रथ लिए जमा रहेगा! मैं, बंगड़, वह, यह— सभी तेरी इंतज़ार में रहेंगे।

हम मिले थे, मिले हैं, मिलेंगे। हाँ माँ!

तेरा
लाल"

पढ़ने के बाद पत्र को काँपते हाथ से मैंने उस भयानक लिफ़ाफे में भर दिया। मेरी पत्नी की विकलता हिचकियों पर चढ़कर कमरे को करुणा से कँपाने लगी। मगर, वह जानकी ज्यों-की-त्यों, लकड़ी पर झुकी, पूरी खुली और भावहीन आँखों से मेरी ओर देखती रही, मानो वह उस कमरे में थी ही नहीं।

क्षण-भर बाद हाथ बढ़ाकर मौन भाषा में उसने पत्र माँगा। और फिर, बिना कुछ कहे कमरे के फाटक के बाहर हो गई, डुगुर-डुगुर लाठी टेकती हुई।

इसके बाद शून्य-सा होकर मैं धम्-से कुरसी पर गिर पड़ा। माथा चक्कर खाने लगा। उस पाजी लड़के के लिए नहीं, इस सरकार की क्रूरता

के लिए भी नहीं, उस बेचारी भोली, बूढ़ी जानकी— लाल की माँ के लिए। आह! वह कैसी स्तब्ध थी। उतनी स्तब्धता किसी दिन प्रकृति को मिलती तो आँधी आ जाती। समुद्र पाता तो बौखला उठता।

जब एक का घंटा बजा, मैं ज़रा सगबगाया। ऐसा मालूम पड़ने लगा मानो हरारत पैदा हो गई माथे में, छाती में, रग-रग में। पत्नी ने आकर कहा, "बैठे ही रहोगे? सोओगे नहीं?" मैंने इशारे से उन्हें जाने को कहा।

फिर मेज्जिनी की जिल्द पर नज़र गई। उसके ऊपर पड़े रबर पर भी। फिर अपने सुखों की, जमींदारी की, धनिक जीवन की और उस पुलिस अधिकारी की निर्दय, नीरस, निस्सार आँखों की स्मृति कलेजे में कंपन भर गई। फिर रबर उठाकर मैंने उस पाजी का पेंसिल-खचित नाम पुस्तक की छाती पर से मिटा डालना चाहा।

"माँ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ"

मुझे सुनाई पड़ा। ऐसा लगा, गोया लाल की माँ कराह रही है। मैं रबर हाथ में लिए, दहलते दिल से, खिड़की की ओर बढ़ा। लाल के घर की ओर कान लगाने पर कुछ सुनाई न पड़ा। मैं सोचने लगा, भ्रम होगा। वह अगर कराहती होती तो एकाध आवाज़ और अवश्य सुनाई पड़ती। वह कराहने वाली औरत है भी नहीं। रामनाथ के मरने पर भी उस तरह नहीं घिघियाई जैसे साधारण स्त्रियाँ ऐसे अवसरों पर तड़पा करती हैं।

मैं पुनः सोचने लगा। वह उस नालायक के लिए क्या नहीं करती थी! खिलौने की तरह, आराध्य की तरह, उसे दुलारती और सँवारती फिरती थी। पर आह रे छोकरे!

"माँ ऽ ऽ ऽ ऽ"

फिर वही आवाज़। जरूर जानकी रो रही है, वैसे ही जैसे कुर्बानी के पूर्व गाय रोए। ज़रूर वही विकल, व्यथित, विवश बिलख रही है। हाय री माँ! अभागिनी वैसे ही पुकार रही है जैसे वह पाजी गाकर, मचलकर, स्वर को खींचकर उसे पुकारता था।

अँधेरा धूमिल हुआ, फीका पड़ा, मिट चला। उषा पीली हुई, लाल हुई। रवि रथ लेकर वहाँ क्षितिज के उस छोर पर आकर पवित्र मन से खड़ा हो गया। मुझे लाल के पत्र की याद आ गई।

"माँ ऽ ऽ ऽ"

मानो लाल पुकार रहा था, मानो जानकी प्रतिध्वनि की तरह उसी पुकार को गा रही थी। मेरी छाती धक्-धक् करने लगी। मैंने नौकर को पुकार कर कहा, "देखो तो, लाल की माँ क्या कर रही है?"

जब वह लौटकर आया, तब मैं एक बार पुनः मेज और मेज्ज़िनी के सामने खड़ा था। हाथ में रबर लिए उसी उद्देश्य से। उसने घबराए स्वर में कहा, "हुजूर, उनकी तो अजीब हालत है। घर में ताला पड़ा है और वे

दरवाजे पर पाँव पसारे, हाथ में कोई चिट्ठी लिए, मुँह खोले, मरी बैठी है। हाँ सरकार, विश्वास मानिए, वे मर गई हैं। साँस बंद है, आँखें खुलीं''

प्रश्न अभ्यास

(1) पुलिस सुपरिंटेंडेंट के पूछने पर लेखक ने लाल के परिवार के बारे में उन्हें क्या बताया?

(2) पुलिस सुपरिंटेंडेंट ने लेखक को लाल से सावधान और दूर रहने का सुझाव क्यों दिया?

(3) नीचे लिखे वाक्य को पढ़कर प्रश्नों के उत्तर दो।
''बड़ी धर्मात्मा, विवेकी और न्यायी सरकार है यह।''
(क) यह वाक्य किसने, किससे, कहाँ और कब कहा?
(ख) इसमें किस सरकार की ओर संकेत है?
(ग) इस कथन में गम्भीरता है या व्यंग्य?

(4) लाल के व्यक्तित्व और चरित्र के बारे में इस कहानी से उद्धृत कर कुछ वाक्य लिखो। जैसे— ''लम्बा, सुडौल, सुन्दर, तेजस्वी। सविनय, सुमधुर स्वर....''

(5) नीचे फिखा वाक्य पढ़कर प्रश्नों के उत्तर दो।
''माँ! तू तो ठीक भारत-माता-सी लगती है।''
(क) इस तरह के वाक्य सुनकर माँ कैसा महसूस करती थी?
(ख) माँ में और भारत माता में क्या समानताएँ बताई गई हैं? कहानी के अनुसार बताओ।
(ग) बताओ कि लाल की माँ सरलता, मातृत्व, त्याग और तपस्या की सजीव मूर्ति किस प्रकार थी?
(घ) कहानी के अंत में माँ का क्या हुआ?

(6) नीचे लिखे कथन के सही प्रमाण पर √ लगाओ।
''लाल और उसके साथी पक्के देशभक्त थे, वे देश कीपरतंत्रता दूर करना चाहते थे। इसीलिए
(क) वे फाँसी के फंदे पर झूल गए।
(ख) वे कमरे में होहल्ला मचाया करते थे।
(ग) वे माँ का सम्मान किया करते थे।''

(7) लाल और उसके साथियों से भारत के नवयुवकों को क्या प्रेरणा मिलती है?

(8) लाल की माँ सभी युवकों को लाल की तरह ही क्यों मानती थी?

(9) लाल और उसके साथियों को पैरवी करने के लिए कोई वकील क्यों नहीं मिला? सही उत्तर पर √ लगाओ।
(क) वकील को देने के लिए उनके पास पैसे नहीं थे।
(ख) सभी वकील अंग्रेज़ सरकार से डरते थे।
(ग) कोई वकील इतना बुद्धिमान नहीं था कि उनकी पैरवी कर पाता।

(10) लड़कों ने माँ से अपनी फाँसी की सज़ा की बात क्यों छिपाई?

(11) लाल के मित्रों का जो चित्र माँ ने खींचा है, उसे अपने शब्दों में लिखो।

(12) इस कहानी को किस प्रकार की रचना माना जाएगा? सही उत्तर पर √ लगाओ।

(क) यह उद्दंड लड़कों की अनुशासन हीनता की कहानी है।

(ख) यह पुलिस के जुल्मों को प्रकट करने वाली कहानी है।

(ग) यह मातृभूमि के लिए मर मिटने वाले देशभक्त युवकों के आत्म बलिदान की कहानी है।

(घ) यह पुत्र से प्रेम करने वाली एक पागल माँ की दुखांत कहानी है।

(13) इस कहानी का कोई अन्य शीर्षक सुझाओ।

जैनेन्द्र कुमार

जैनेन्द्र कुमार जैन का जन्म अलीगढ़ जिले के कौड़ियागंज में सन् 1905 में हुआ था। इन्होंने दसवीं तक की शिक्षा हस्तिनापुर के जैन गुरुकुल में प्राप्त की जिसके संचालक इनके मामा महात्मा भगवानदीन थे। इस आश्रम की पढ़ाई समाप्त कर जैनेन्द्र जी उच्च शिक्षा के लिए काशी हिन्दू विश्वविद्यालय चले गए। उस समय देश में गांधी जी के असहयोग आंदोलन की धूम थी। वे गांधी जी के आह्वान पर पढ़ाई छोड़ कर 1921 में असहयोग आंदोलन में शामिल हो गए। गांधी जी के अहिंसात्मक जीवन-दर्शन में इनकी अत्यधिक रुचि थी। इन पर इनकी माताजी का भी बड़ा प्रभाव था। माताजी 'जैन महिला आश्रम' की संस्थापिका-संचालिका थीं। जैन धर्म और गांधी जी के सिद्धांतों से ये इतने प्रभावित थे कि सत्य और अहिंसा के सिद्धांत इनके व्यक्तित्व के अभिन्न अंग बन गए। इनके लेखन में भी ये सिद्धांत परिलक्षित होने लगे।

जैनेन्द्र जी का पहला उपन्यास '***परख***' सन् 1929 में प्रकाशित हुआ। उसने पाठकों और आलोचकों का ध्यान आकृष्ट किया। इसके बाद इनकी कुछ और पुस्तकों के छपते ही इनकी गिनती शीर्षस्थ कथाकारों में होने लगी। इनके प्रमुख उपन्यास हैं— ***'अनामस्वामी', 'त्यागपत्र', 'सुनीता', 'कल्याणी', 'स्पर्धा', 'जयवर्धन'*** और ***मुक्तिबोध'*** । इनकी कहानियों के अनेक संग्रह प्रकाशित हुए हैं — ***'वातायन', 'एक रात', 'दो चिड़ियाँ', 'फाँसी', 'नीलम देश की राजकन्या', 'ध्रुवयात्रा'*** आदि। जैनेन्द्र की गणना उच्च कोटि के विचारकों में होती है। इनके चिंतन परक निबंधों के संकलन हैं — ***'जैनेन्द्र के विचार', 'प्रस्तुत प्रश्न', 'संस्मरण', 'समय और हम', 'इतस्ततः'*** एवं ***'परिप्रेक्ष'*** ।

जैनेन्द्र जी को साहित्य अकादमी अपने पुरस्कार से सम्मानित कर चुकी है। सन् 1984 में उत्तर प्रदेश सरकार ने अपना सर्वोच्च पुरस्कार 'भारत भारती' भी इन्हें प्रदान किया। आप प्रारम्भ से ही दिल्ली में रहकर साहित्य-साधना कर रहे हैं। भारत सरकार ने इन्हें पद्मभूषण से अलंकृत किया है।

'अपना-अपना भाग्य' कहानी जैनेन्द्र जी की भाषा-शैली का प्रतिनिधित्व करती है। छोटे-छोटे वाक्यों का प्रयोग करना इनकी विशेषता है। दर्शन और मनोविज्ञान का प्रभाव इनकी हर रचना में स्पष्ट दीखता है। जैनेन्द्र के पूर्व प्रेमचंद युग के कथा-साहित्य में सामाजिक भावना की प्रधानता थी। जैनेन्द्र के साहित्य में व्यक्तित्व की प्रधानता है। इन्होंने अपनी कहानियों में व्यक्ति को प्रधान मानते हुए उसकी भावनाओं, जीवन की विषम परिस्थितियों से उत्पन्न व्यक्तिगत समस्याओं तथा उनके कारणों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया है। ***'अपना-अपना भाग्य'*** में सामाजिक भावना को इन्होंने व्यक्ति के दृष्टिकोण से ही परखा है। इसमें पात्रों के उद्देश्यपूर्ण कथन सूत्र रूप में हैं।

अपना-अपना भाग्य

बहुत कुछ निरुद्देश्य घूम चुकने पर हम सड़क के किनारे बेंच पर बैठ गए।

नैनीताल की संध्या धीरे-धीरे उतर रही थी। रुई के रेशे से भाप के बादल हमारे सिरों को छू-छूकर बेटोक घूम रहे थे। हल्के प्रकाश और अँधियारी से रंग कर कभी वे पीले दीखते, कभी सफ़ेद और फिर ज़रा अरुण पड़ जाते, जैसे हमारे साथ खेलना चाह रहे हों।

पाँच, दस, पन्द्रह मिनट हो गए। मित्र के उठने का कोई इरादा न मालूम हुआ। मैंने झुँझला कर कहा— ''चलिए भी ....''

''अरे, जरा बैठो .... ''

हाथ पकड़कर जरा बैठने के लिए जब ज़ोर से बैठा लिया गया, तो और चारा न रहा। सनक से छुटकारा पाना आसान न था और ज़रा बैठना भी 'जरा' न था।

चुपचाप बैठे तंग हो रहा था, कुढ़ रहा था कि मित्र अचानक बोले— ''देखो, वह क्या है?''

मैंने देखा कि कुहरे की सफ़ेदी में कुछ ही हाथ दूर से एक काली-सी मूर्ति हमारी तरफ़ आ रही थी। मैंने कहा— ''होगा कोई।''

तीन गज की दूरी से दीख पड़ा, एक लड़का, सिर के बड़े-बड़े बाल खुजलाता चला आ रहा था। नंगे पैर है, नंगे सिर, एक मैली-सी कमीज लटकाए है।

पैर उसके न जाने कहाँ पड़ रहे थे, और वह न जाने कहाँ जा रहा था, कहाँ जाना चाहता था; न दायाँ था, न बायाँ था। पास की चुँगी की लालटेन के छोटे-से प्रकाश-वृत्त में देखा— कोई दस-बारह बरस का होगा। गोरे रंग का है, पर मैल से काला पड़ गया है, आँखें अच्छी, बड़ी, पर सूनी हैं। माथा जैसे अभी से झुर्रियाँ खा गया है।

वह हमें न देख पाया, वह जैसे कुछ भी न देख रहा था। न नीचे की धरती, न ऊपर चारों ओर फैला हुआ कुहरा, न सामने का तालाब, और न एकाकी दुनिया। वह बस अपने निकट वर्तमान को देख रहा था।

मित्र ने आवाज़ दी— ''ए!''

उसने अपनी सूनी आँखें फाड़ दीं।

"दुनिया सो गई, तू ही क्यों घूम रहा है?"

बालक मूक, फिर भी बोलता हुआ-सा चेहरा लेकर खड़ा रहा।

"कहाँ सोएगा?"

"यहीं कहीं।"

"कल कहाँ सोया था?"

"दुकान पर।"

"आज वहाँ क्यों नहीं?"

"नौकरी से हटा दिया।"

"क्या नौकरी थी?"

"सब काम; एक रुपया और जूठा खाना।"

"फिर नौकरी करेगा?"

"हाँ।"

"बाहर चलेगा?"

"हाँ।"

"आज क्या खाना खाया?"

"कुछ नहीं।"

"अब खाना मिलेगा?"

"नहीं मिलेगा।"

"यों ही सो जाएगा?"

"हाँ।"

"कहाँ?"

"यहीं कहीं।"

"इन्हीं कपड़ों में?"

बालक फिर आँखों से बोलकर मूक खड़ा रहा। आँखें मानो बोलती थीं— 'यह भी कैसा मूर्ख प्रश्न है!"

"माँ-बाप हैं?"

"हाँ।"

"कहाँ?"

"पन्द्रह कोस दूर, गाँव में।"

"तू भाग आया?"

"हाँ।"

"क्यों?"

"मेरे कई भाई-बहिन हैं, सो भाग आया। वहाँ काम नहीं, रोटी नहीं। बाप भूखा रहता था और माँ भूखी रहती थी, रोती थी, सो भाग आया। एक साथी और था। उसी गाँव का था, मुझसे बड़ा। दोनों साथ यहाँ आए। वह अब नहीं है।"

"कहाँ गया?"

"मर गया।"

बस ज़रा-सी उम्र में ही इसकी मौत से पहचान हो गई— मुझे अचरज हुआ, पूछा— "मर गया?"

"हाँ, साहब ने मारा, मर गया।"

"अच्छा, हमारे साथ चल।"

वह साथ चल दिया— लौटकर हम वकील दोस्त के होटल पहुँचे।

"वकील साहब!"

वकील साहब होटल के कमरे से उतरकर आए। काश्मीरी दुशाला लपेटे थे, मोजे चढ़े पैरों में चप्पलें थीं। स्वर में हल्की झुँझलाहट थी, कुछ लापरवाही थी।

"ओ हो फिर आप! कहिए।"

"आपको नौकर की जरूरत थी न, देखिए यह लड़का है।"

"कहाँ से लाए? इसे आप जानते हैं?"

"जानता हूँ— यह बेईमान नहीं हो सकता।"

"अजी, ये पहाड़ी बड़े शैतान होते हैं। बच्चे-बच्चे में गुण छिपे रहते हैं—आप भी क्या अजीब हैं उठा लाए कहीं से— लो जी यह नौकर लो।"

"मानिए तो, यह लड़का अच्छा निकलेगा।"

"आप भी....जी बस खूब हैं। ऐरे-गैरे को नौकर बना लिया जाए और अगले दिन वह न जाने क्या-क्या लेकर चम्पत हो जाए।"

"आप मानते ही नहीं मैं क्या करूँ।"

"मानें क्या खाक। आप भी... जी अच्छा मज़ाक करते हैं। अच्छा, अब हम सोने को जाते हैं।"

और वह चार रुपया रोज़ के किराए वाले कमरे में सजी मसहरी पर सोने झटपट चले गए।

बालक कुछ ठहरा। मैं असमंजस में रहा। तब वह प्रेत गति से एक ओर बढ़ा और कुहरे में मिल गया। हम भी होटल की ओर बढ़े। हवा तीखी थी— हमारे कोटों को पार कर बदन में तीर-सी लगती थी।

सिकुड़ते हुए मित्र ने कहा— "भयानक शीत है। उसके पास कम— बहुत कम कपड़े ···।"

"यह संसार है यार!" मैंने स्वार्थ की फिलासफी सुनाई— "चलो, पहले बिस्तर में गरम हो लो, फिर किसी और की चिन्ता करना।"

उदास होकर मित्र ने कहा— "स्वार्थ! जो कहो, लाचारी कहो, निठुराई कहो— या बेहयाई।"

दूसरे दिन नैनीताल स्वर्ग के किसी काले गुलाम पशु के दुलार का वह

बेटा—वह बालक, निश्चित् समय पर हमारे 'होटल डि पव' में नहीं आया। हम अपनी नैनीताल-सैर खुशी-खुशी खत्म कर चलने को हुए। उस लड़के की आस लगाए बैठे रहने की जरूरत हमने न समझी।

मोटर में सवार होते ही यह समाचार मिला— पिछली रात, एक पहाड़ी बालक, सड़क के किनारे— पेड़ के नीचे, ठिठुर कर मर गया।

मरने के लिए उसे वही जगह, वही दस बरस, की उम्र, और वही काले चिथड़ों की कमीज मिली। आदमियों की दुनिया ने बस यही उपहार उसके पास छोड़ा था।

पर बतलाने वालों ने बताया कि गरीब के मुँह पर, छाती, मुट्ठियों और पैरों पर, बरफ की हल्की-सी चादर चिपक गई थी, मानो दुनिया की बेहयाई ढँकने के लिए प्रकृति ने शव के लिए सफेद और ठंडे कफन का प्रबन्ध कर दिया था।

सब सुना और सोचा— अपना-अपना भाग्य।

प्रश्न अभ्यास

(1) नीचे लिखा वाक्य पढ़ कर प्रश्नों के उत्तर दो।

"चुपचाप बैठे तंग हो रहा था, कुढ़ रहा था कि मित्र अचानक बोले— 'देखो, वह क्या है?' "

(क) लेखक कुढ़ क्यों रहा था?

(ख) दोनों मित्र किस शहर में और कहाँ बैठे हुए थे?

(ग) उन्होंने क्या देखा? लेखक ने 'होगा कोई ' क्यों कहा?

(घ) लड़के से उनकी क्या बातचीत हुई?

(2) पहली ही नज़र में यह कैसे पता चला कि लड़का बहुत गरीब है?

(3) लड़के ने अपने गाँव से भाग आने का क्या कारण बताया?

(4) दोनों मित्र उस लड़के को कहाँ ले गए और क्यों?

(5) वकील साहब ने लड़के को नौकरी क्यों नहीं दी?

नीचे लिखे उत्तरों में जो सही हो, उस पर √ लगाओ।

(क) वकील साहब को नौकर की ज़रुरत नहीं थी।

(ख) वकील साहब अपरिचित अनजान लड़के को नौकर बनाकर अपने घर में नहीं रखना चाहते थे।

(ग) लड़का चोर था, इसलिए उसे घर में रखना ठीक काम नहीं था।

(घ) लड़का घरेलू काम नहीं जानता था।

(6) वकील साहब और दोनों मित्रों ने रात कहाँ और किस प्रकार काटी?

(7) सोते समय उदास होकर मित्र ने क्या कहा? वह उदास क्यों था?

(8) मोटर में सवार होते समय इन लोगों ने क्या समाचार सुना?

(9) उन्हें कैसे पता चला कि मरने वाला यही बालक था?

(10) तुम्हारे विचार से लड़के की मृत्यु का कारण क्या था?

(11) दुनिया वालों ने बालक के पास कौन सा उपहार छोड़ा?

(12) मरे हुए गरीब लड़के के अंग किस प्रकार के कफन से ढके हुए थे?

(13) प्रकृति ने क्या देकर दुनिया की बेहयाई ढकी?

(14) नीचे लिखा वाक्य पढ़ कर प्रश्नों के उत्तर दो।

"सब सुना और सोचा — अपना-अपना भाग्य!"

(क) लेखक ने सब क्या सुना?

(ख) 'अपना-अपना भाग्य' कहने का क्या अर्थ है?

(ग) यदि दोनों मित्र वकील साहब से कह देते कि वे लड़के को जानते हैं, तो क्या होता? क्या तब भी लड़का भग्यवश मर जाता?

मोहन राकेश

मोहन राकेश का जन्म अमृतसर में 8 जनवरी 1925 ई. को हुआ था। इनका वास्तविक नाम मदनमोहन गुगलानी था, किंतु साहित्य जगत इनको को मोहन राकेश के नाम से ही जानता है। प्रारम्भिक शिक्षा ग्रहण करने के पश्चात् उच्च शिक्षा के लिए ये लाहौर गए जहाँ ओरिएंटल कालेज से इन्होंने शास्त्री की परीक्षा पास की। वहीं से इन्होंने संस्कृत में एम.ए. भी किया। पंजाब के विभाजन के बाद ये जालंधर आ गए और यहाँ से हिन्दी में सर्वोच्च स्थान प्राप्त कर एम.ए. पास किया। इसके बाद बम्बई, शिमला और जालंधर में हिन्दी अध्यापन किया। कुछ वर्षों बाद कहानी पत्रिका ***'सारिका'*** के सम्पादक होकर पुनः बम्बई चले गए। सन् 1962 में इन्होंने नौकरी छोड़ दी और दिल्ली आकर स्वतंत्र लेखन करने लगे। दस वर्षों के दिल्ली वास के बाद अचानक 3 दिसम्बर 1972 को हृदय गति रुक जाने के कारण इनकी मृत्यु हो गई।

इनकी पहली कहानी ***'दोराहा'*** सन् 1947 में ***'सरिता'*** में छपी थी। इसके बाद ये निरंतर कहानियाँ लिखते रहे। फिर नाटक और उपन्यास लेखन के क्षेत्र में आए। इन्होंने काफी भ्रमण किया था और कई यात्रा वृत्तांत भी लिखे थे। इनके प्रमुख कहानी संग्रह हैं — ***'इंसान के खंडहर', 'नए बादल', 'जानवर और जानवर', 'एक और जिन्दगी'*** तथा ***'फौलाद का आकाश'***। प्रमुख उपन्यासों के नाम हैं — ***'अंतराल', 'अँधेरे बंद कमरे',*** और ***'न आने वाला कल'***। इनके लिखे नाटक हैं — ***'पैर तले की जमीन', 'आषाढ़ का एक दिन', 'आधे अधूरे', लहरों के राजहंस'*** और ***'अंडे के छिलके' 'आखिरी चट्टान तक'*** विचारपूर्ण निबंधों के संकलन हैं — ***'परिवेश'*** तथा ***'बकलम खुद'***।

'आषाढ़ का एक दिन' पर उन्हें संगीत नाटक अकादमी का पुरस्कार मिला था। साहित्य अकादमी ने भी उन्हें पुरस्कृत किया था। भारत सरकार ने उन्हें अहिन्दी भाषी हिन्दी लेखक का पुरस्कार प्रदान किया था। नाटक की शब्द शक्ति पर खोज करने के लिए इन्हें नेहरू फेलोशिप दी गई थी किंतु शोध पूर्ण होने के पहले ही इनका देहांत हो गया।

'सौदा' मोहन राकेश की प्रतिनिधि कहानी है। इसमें पहलगाम के एक बाज़ार का दृश्य प्रस्तुत किया गया है। बाज़ार में सौदेबाजी चलती है जिसमें कौन सफल रहता है यह बात अपने दृष्टिकोण पर निर्भर है। लाला सस्ते में घोड़ा किराए पर लेना चाहते हैं वह उन्हें मिलता नहीं। एक-एक कर सभी लोग घोड़े लेकर चले जाते हैं। लाला परिवार के साथ वहीं रह जाते हैं। कहानी का शीर्षक सटीक है। पाठक अपने-अपने दृष्टिकोण से यह समझेंगे कि किसका सौदा सफल रहा, घोड़े वाले का या लाला का। एक तरह से यह जीवन का बाज़ार है जिसमें सभी अपना-अपना सौदा तय कर रहे हैं।

सौदा

दिन के नौ बज रहे थे और हर रोज़ की तरह पहलगाम के बाज़ार में चहल-पहल आरम्भ हो गई थी। लोग नाश्ते के बाद अपने-अपने होटलों और टैंटों से तैयार होकर आ रहे थे। कई पार्टियाँ बाज़ार के एक सिरे से दूसरे सिरे तक चहल-कदमी करती दिखाई देने लगी थीं। अल्सेशियन कुत्ते को लेकर घूमती हुई चेकोस्लोवाकिया की भद्र महिला से लेकर सानफ्रांसिस्को के तरुण दम्पती तक, और सिन्धी डाक्टर की लड़कियों से लेकर तिरुचिनापल्ली के विद्यार्थियों तक, हर एक का चलने का अन्दाज़ कुछ ऐसा था, जैसे वह वहाँ दिग्विजय करने के लिए आया हो। कुछ सुन्दर, छरहरे शरीर, दो-चार याद रहने वाले चेहरे, कहीं एक अच्छी मुस्कराहट या चुभ जाने वाली मुद्रा, वरना केवल वस्त्र, काले चश्मे और कैमरे! दो-एक ऐसे भी चेहरे दिखाई दे रहे थे, जिनकी बदसूरती को शायद घंटों की मेहनत से निखारा गया था। दो प्रौढ़ व्यक्ति अपने तरुण मित्रों के समुदाय में खड़े होकर शोर मचाते हुए लोगों को अपने युवा होने का प्रमाण देने की चेष्टा कर रहे थे। और इस वातावरण में घिरा हुआ एक व्यक्ति जिसकी वेश-भूषा से प्रकट होता था कि वह अमृतसर का लाला है, अपनी पत्नी और बच्चों के साथ एक ओर खड़ा था। वह बहुत-सँवारकर चाकू से एक सेब के टुकड़े काट रहा था, और उनके हाथ में देता जा रहा था। उन लोगों के पास एक दरी, एक सेबों की टोकरी और एक रोटी का डिब्बा रखा था।

पहले पुल की तरफ़ से कुछ घोड़ेवाले घोड़ों की लगामें थामे हुए आ रहे थे। घोड़ों की उजली सज्जा के साथ उनके मैले, फटे हुए वस्त्रों की तुलना करने से लगता था कि वे घोड़ों के मालिक नहीं, घोड़े उनके मालिक हैं। वे लोग आज बहुत धीरे-धीरे बाज़ार की ओर आ रहे थे, जो कि उनके स्वभाव के विरुद्ध था। अक्सर उनमें जो जल्दबाजी दिखाई दिया करती थी, वह आज नहीं थी।

घोड़ेवालों के बाज़ार में पहुँचते ही बाज़ार की हलचल बढ़ गई। बहुत-से लोग उन्हें घेरकर आदेशात्मक स्वर में उनके घोड़ों की माँग करने लगे

— ''हतो, पाँच घोड़े लाओ, अच्छे जवान होने चाहिए।''

— ''हतो, ये दोनों घोड़े हमारे साथ ले आओ, चन्दनवाड़ी चलना है।''

— ''चल हतो, उधर मेम साहब घोड़ा माँग रही हैं।''

ज्यादातर लोगों को चन्दनवाड़ी के लिए घोड़े लेने थे। पहलगाम आने वाले लोग एक बार चन्दनवाड़ी तक घुड़सवारी अवश्य करते हैं, हालांकि चन्दनवाड़ी में कोई विशेष आकर्षण नहीं और वह अमरनाथ के रास्ते का एक साधारण पड़ाव है। पर क्योंकि वहाँ जाने का रिवाज़ है, इसलिए लोग वहाँ गए बिना अपनी पहलगाम की यात्रा पूर्ण नहीं समझते।

उस लाला ने भी निश्चिन्ततापूर्वक सेब का टुकड़ा चबाते हुए एक घोड़ेवाले को आदेश दिया— ''तीन घोड़े इधर लाना भाई, अच्छे-बढ़िया घोड़े हों।''

परन्तु घोड़ेवाले ने उत्तर में उपेक्षा-सी दिखलाते हुए कहा —''तीन घोड़ों के बारह रुपये होंगे।''

—''सब घोड़े तीन-तीन रुपये में जाते हैं!'' — लाला ने ज़रा झिड़कते हुए कहा— ''हम आज पहली बार नहीं जा रहे।''

यह छोटा-सा झूठ उसकी व्यवहार-बुद्धि ने ही उससे बुलवा दिया, हालांकि कुछ देर पहले जिस तरह एक व्यक्ति से वह चन्दनवाड़ी के सम्बन्ध में पूछ रहा था, उससे स्पष्ट था कि वह पहलगाम में अपने जीवन में पहली बार आया है और शायद पिछली शाम को ही आया है। उसी व्यक्ति से उसे पता चला था कि घोड़ेवाले चन्दनवाड़ी के तीन-तीन रुपये लेते हैं।

—''चार रुपये सरकारी रेट है,'' घोड़ेवाले ने घोड़े की ज़ीन ठीक करते हुए पहले के से ही स्वर में कहा— ''चार रुपये से कम में आज कोई नहीं जाएगा।''

—''तू जा, अभी पचास मिल जाएँगे!'' —लाला ने स्वर में तिरस्कार लाकर कहा और दूसरे घोड़ेवाले को आवाज़ दी।

परन्तु सब घोड़ेवाले उस दिन चार-चार रुपये ही माँग रहे थे। और लोग भी उनसे इसी बात पर झगड़ रहे थे। वे ही घोड़ेवाले, जो रोज़ तीन-तीन रुपये में चलने के लिए लोगों की मिन्नत किया करते थे, और कई बार दो-दो रुपये में भी चलने को तैयार हो जाते थे, आज सीधे मुँह बात नहीं कर रहे थे। लोग कह रहे थे कि उन्होंने स्वयं ही आज घोड़ेवालों के दिमाग आसमान पर चढ़ाए हैं, घोड़ेवाले उन्हें ज़रूरतमन्द समझकर नखरा दिखा रहे हैं और वे सब अगर निश्चय कर लें कि कोई घोड़ा नहीं लेगा, तो अभी घोड़ेवाले उनकी खुशामद करेंगे और दो-दो रुपये में चलने को तैयार हो जाएँगे।

—"आज क्या बात है?" किसी ने पूछा।

—"कुछ बात नहीं", —एक घोड़ेवाले ने उत्तर दिया— "चार रुपये सरकारी रेट है।"

—"पहले भी तो सरकारी रेट चार रुपये था, फिर पहले क्यों तीन रुपये लेते थे?" —प्रश्नकर्त्ता ने पूछा।

"यह तो मर्ज़ी की बात है, साहब," —एक तरुण घोड़ेवाले ने उत्तर दिया—"पहले मर्ज़ी थी, लेते थे। आज मर्ज़ी नहीं है, नहीं लेते।"

पर धीरे-धीरे इधर-उधर की चिमगोइयों से लोगों को पता चल गया कि कल किसी बाबू ने एक घोड़ेवाले को इस बात पर पीट दिया था कि वह उससे चन्दनवाड़ी के तीन की बजाय चार रुपये माँग रहा था। इसलिए सब घोड़ेवालों ने निश्चय किया था कि वे आज से चार रुपये से कम में चन्दनवाड़ी नहीं जाएँगे। अपने मैले परिधानों के बावजूद आज से वे एक गर्व अनुभव कर रहे थे और उनके रेखांकित चेहरों का उल्लास व्यक्त करती हुई उनकी मैली दंतपंक्तियाँ बार-बार दिखाई दे जाती थीं।

"थोड़ी देर इन्तज़ार करो जी, ये लोग अभी रास्ते पर आएँगे।"—लाला ने अब बढ़कर आगे आते हुए कहा— "आज हम इन्हें चार-चार रुपये देंगे, तो कल ये लोगों से पाँच-पाँच रुपये माँगेंगे। जो जायज़ है, वह देना चाहिए। इन्हें जाने दीजिए। अभी और घोड़ेवाले आ जाएंगे।"

खालसा होटल का नौकर आवाज़ दे रहा था कि होटल में अठारह घोड़े चाहिए। इसलिए घोड़ेवाले खालसा होटल की तरफ चल दिए। इस पर कुछ लोगों ने परिस्थिति से तुरन्त समझौता कर लिया और चार-चार रुपये में अपने लिए घोड़े ठहरा लिए। लाला और कुछ अन्य लोगों ने असन्तोष प्रकट किया कि वे लोग खामखाह घबराकर अपने को घोड़ेवालों के सामने हीन कर रहे हैं। पर जिन्होंने घोड़े ले लिए थे, वे चुपचाप उन पर सवार होकर चल दिए। लाला के साथ केवल तिरुचिनापल्ली के विद्यार्थी और एक बंगाली परिवार रह गया। लाला कुछ देर उन्हें अपना दृष्टिकोण समझाता रहा, फिर अपने परिवार के पास आ गया।

क्योंकि उस स्थान पर काफ़ी बकझक हो चुकी थी, इसलिए वह अपनी पत्नी और बच्चे को साथ लिये हुए पुल की दिशा में चल दिया। उधर से और बहुत घोड़ेवाले आ रहे थे। उसने उनमें से तीन-चार को रोककर पूछा, पर हर एक ने चार रुपये ही माँगे। वह कुछ देर उस दिशा में चलकर फिर वापस लौट पड़ा। उसका बच्चा जो रास्ते के हर घोड़े को उत्सुकतापूर्ण दृष्टि से देखता था, चलते-चलते ठोकरें खा रहा था। लाला निर्णयात्मक भाव से सड़क के बीच ठहर गया। पास से गुज़रते हुए तीन घोड़ों को उसने ठहरा लिया और एक घोड़ेवाले को आदेश दिया कि वह उसकी धर्मपत्नी

को घोड़े पर बैठने में सहायता दे। दूसरे घोड़ [illegible] और तीसरे घोड़े की रकाब में पाँव रखकर वह प्रतीक्षा [illegible] ने बच्चे को बैठा दिया घोड़ेवाला आकर उसे अपने शरीर को ऊपर उछालने में सहायता दे। कि

—"लाला कहाँ चलना है?" —घोड़ेवाले ने उसे हाथ का सहारा देते हुए पूछा।

—"चन्दनवाड़ी।" —उसने घोड़े पर जमकर बैठते हुए कहा।

—"चार-चार रुपये होंगे।"

लाला ने घोड़े पर बैठते हुए विश्वविजयी की तरह एक दृष्टि चारों ओर डाली और घोड़ेवाले की बात को महत्व न देकर कहा—"ज़रा बताओ, लगाम क़िस तरह पकड़नी है?"

घोड़ेवाले ने लगाम उसके हाथ में दे दी और कहा—"साथ आठ-आठ आना बख्शीश मिल जाए।"

—"जो मुनासिब पैसे हैं, मिल जाएँगे।" —लाला ने कहा —"हम किसी का हक नहीं रखते।" और उसने लगाम को ज़रा-सा झटका दिया। पर उससे घोड़ा आगे चलने की बजाय पीछे की ओर घूम गया।

—"लाला, यह ऐसे नहीं चलेगा," — घोड़ेवाला जरा हँसकर बोला—"तुम पैसे की बात करो, यह अभी दौड़ने लगेगा।"

"तुमसे कह दिया है कि ठीक पैसे दे देंगे।"

—"चार-चार रुपया भाड़ा और आठ-आठ आना बख्शीश।"

—"तीन-तीन रुपया भाड़ा और चार-चार आना"

—"तो उतर जाओ, लाला।"— घोड़ेवाले ने बीच में ही कहा— "तीन रुपये में कोई घोड़ा नहीं जाएगा।"

—"कैसे नहीं जाएगा?" लाला जरा आवेश के साथ बोला— "जब रोज़ जाता है, तो आज भी जाएगा!"

—"नहीं जाएगा साहब, आज नहीं जाएगा!"

—"तो हम भी घोड़े से नहीं उतरेंगे, खड़े रहो जितनी देर खड़े रहना है!" —और वह पंजाबी की गालियाँ मिलाकर ऐसी हिन्दी बोलने लगा, जिसमें विशुद्ध भाव-ही-भाव था, कला का अंश तक नहीं था। और तभी जाने क्या हुआ कि उसकी पत्नी का घोड़ा सहसा बिदककर सरपट दौड़ उठा। उस बेचारी ने सँभलने की बहुत कोशिश की, पर कुछ गज जाते-न-जाते वह बिल्कुल गिरने को हो गई। घोड़ेवाले ने भागकर घोड़े को रोक लिया।

लाला ऐसी स्थिति में था कि वह बिना घोड़ेवाले की सहायता के उतर भी न सकता था। उसने एक पैर रकाब से निकाल लिया, पर उसे ज़मीन तक पहुँचाने की चेष्टा में उसका दूसरा पैर उलझ गया। घोड़ेवाले ने उसे सहारा देकर उतार दिया। तब तक उसकी पत्नी भी किसी तरह सँभलकर

लाला ने उतरकर बच्चे को उतारा और एक ओर खड़े होकर उतर उर्सी भाषा में अपने उद्‌गार प्रकट करने लगा। घोड़ेवाले वहाँ से चले गए, क्योंकि दूर कोई उन्हें हाथ के इशारे से बुला रहा था।

बंगाली परिवार और तिरुचिनापल्ली के विद्यार्थी भी अब घोड़ों पर सवार होकर आ रहे थे। और भी कितने ही गिरोह चन्दनवाड़ी की दिशा में जा रहे थे। कुछ युवक और युवतियाँ तेजी से घोड़ों को दौड़ाते हुए निकल गए। बच्चा चकित दृष्टि से उन्हें दूर तक जाते देखता रहा।

लाला की पत्नी ने उससे कहा कि यदि चलना हो, तो उन्हें भी और लोगों की तरह चुपचाप चार-चार रुपये में घोड़े ले लेने चाहिए। लाला ने जैसे आत्म-समर्पण करते हुए उसकी बात मानकर घोड़ेवाले को आवाज़ दी कि वह उनके लिए तीन घोड़े ले आए।

''नहीं साहब, घोड़ा खाली नहीं है।'' —घोड़ेवाले ने दूर से ही कहा।

पास से निकलता हुआ एक और घोड़ेवाला भी यही कहकर चला गया कि घोड़ा खाली नहीं है। तीसरे ने यह उत्तर देना भी आवश्यक नहीं समझा। आखिर एक घोड़ेवाले ने रुककर कहा— ''चार रुपया भाड़ा और एक रुपया बख्शीश मिलेगा?''

—''भाड़ा तुम्हें रेट के मुताबिक देंगे,'' लाला ने खिसियाने स्वर में कहा— ''बख्शीश हमारी मर्ज़ी पर है।''

— ''नहीं साहब'',— घोड़ेवाला बोला— ''बख्शीश भी पहले तय होना चाहिए। उधर एक और साहब घोड़ा माँग रहा है। वह एक-एक रुपया बख्शीश देता है।''

और इससे पहले कि लाला निश्चय कर पाता कि बख्शीश की स्वीकृति दे या नहीं, एक और घोड़ेवाले ने उस घोड़ेवाले को बुला लिया। यह एक यूरोपियन परिवार के लिए सात घोड़े इकट्ठे कर रहा था। शीघ्र ही वे लोग पास से निकलकर चले गए।

लाला ने बाज़ार के एक सिरे से दूसरे सिरे तक दृष्टि दौड़ाकर देखा, कहीं एक भी घोड़ा दिखाई नहीं दे रहा था। उसने पत्नी और बच्चे को वहीं छोड़कर स्वयं बाज़ार का एक पूरा चक्कर लगाया। पर सभी घोड़े जा चुके थे। सहसा उसकी दृष्टि एक घोड़ेवाले पर पड़ी, जो क्लब की तरफ से घोड़ा लिये बाज़ार की ओर आ रहा था। वह रुककर उसकी प्रतीक्षा करने लगा। घोड़ा और घोड़ेवाला बहुत धीरे-धीरे चल रहे थे और लगता था कि दोनों ही बीमार हैं। पास पहुँचने पर लाला ने घोड़ेवाले से पूछा कि वह चन्दनवाड़ी चलने का क्या लेगा?

''तीन रुपया।'' घोड़ेवाले ने खाँसकर उत्तर दिया।

लाला के चेहरे पर प्रसन्नता की लहर दौड़ गई। उसे लगा कि अन्ततः विजय उसी की हुई है। उसने घोड़ेवाले से कहा कि वह तुरन्त दो घोड़े और

ले आए।

"और घोड़ा आप देख लीजिए, मेरे पास तो एक ही घोड़ा है", घोड़ेवाला बोला— "रखना हो तो बताइए, नहीं तो मैं उधर से एक मेम के बच्चों को घुमाने के लिए ले जाऊँगा।"

"तू मेरे साथ रह, अभी दो घोड़े और मिल जाएँगे।" लाला ने कहा और उसे साथ लिये हुए वहाँ आ गया, जहाँ उसकी पत्नी खड़ी थी। वहाँ जाकर उसने आत्मश्लाघात्मक ढंग से पत्नी को बताया कि किस तरह अब तीन-तीन रुपये में घोड़े मिल रहे हैं और थोड़ी देर तक शायद इससे भी कम में मिलने लगेंगे। उसके बाद वह पत्नी और बच्चे को साथ लिये हुए घोड़ों की तलाश में बाज़ार में चक्कर लगाने लगा। बच्चा रोटी का डिब्बा उठाए था, पत्नी सेबों की टोकरी हाथ में लिये थी और वह स्वयं दरी बगल में सँभाले था। घोड़ेवाला उनके पीछे-पीछे घोड़े की लगाम सँभाले खाँसता हुआ चल रहा था। बहुत देर तक वे इस तरह बाज़ार के चक्कर लगाते रहे, पर कहीं कोई दूसरा घोड़ा दिखाई नहीं दे रहा था।

प्रश्न अभ्यास

(1) लाला कहाँ का रहने वाला था? उसके साथ और कौन लोग थे?

(2) ऐसा क्यों लगता था कि घोड़ेवाले घोड़ों के मालिक नहीं, बल्कि घोड़े ही उनके मालिक हैं?

(3) आज घोड़ेवाले बाजार की ओर बहुत धीरे-धीरे क्यों आ रहे थे?
सही उत्तर पर √ लगाओ।
- (क) क्योंकि आज ठंड ज्यादा थी।
- (ख) क्योंकि कल एक बाबू ने एक घोड़ेवाले को पीट दिया था। और उसी के विरोध में आज घोड़ेवालों ने बगावत कर रखी थी। इससे वे अपनी गरज नहीं दिखा रहे थे।
- (ग) क्योंकि आज तेज़ चलने पर पुलिस ने पाबंदी लगा रखी थी।

(4) आज घोड़ेवालों ने किराया क्यों बढ़ा रखा था?

(5) घोड़ों के किराए का सरकारी रेट क्या था?

(6) नीचे लिखा वाक्य पढ़ कर प्रश्नों के उत्तर दो।
"नहीं साहब, घोड़ा खाली नहीं है।"
- (क) यह बात किसने किससे कही?
- (ख) घोड़े को लेकर कहाँ जाना था?
- (ग) घोड़ेवाला लाला की इतनी उपेक्षा क्यों कर रहा था?
- (घ) क्या लाला को अंत में खाली घोड़ा मिला? यदि हाँ, तो क्या लाला चंदनवाड़ी पहुँच सका?

(7) लाला ने घोड़ेवाले से क्या झूठ बोला और क्यों?

(8) लाला पत्नी और बच्चे को छोड़कर स्वयं बाज़ार में क्यों गया था?

(9) लाला घोड़े से उतरने के लिए मजबूर क्यों हो गया?

(10) बच्चा रास्ते के हर घोड़े को उत्सुकता से क्यों देख रहा था?

सही उत्तर पर √ लगाओ।

(क) क्योंकि उसने आज तक घोड़ा नहीं देखा था।

(ख) क्योंकि वह थका हुआ था और चाहता था कि जल्दी से सौदा पट जाए और उसे घोड़े पर बैठने को मिल जाए।

(ग) वह घोड़े की परख कर रहा था क्योंकि चंदनवाड़ी ले जाने के लिए एक जवान और तगड़े घोड़े की ज़रूरत थी।

(11) नीचे लिखा वाक्य पढ़ कर प्रश्नों के उत्तर दो।

"लाला के चेहरे पर प्रसन्नता की लहर दौड़ गई।"

(क) लाला को किस बात की प्रसन्नता हुई?

(ख) क्या यह प्रसन्नता कुछ देर बाद भी रही? नहीं, तो क्यों?

(ग) लाला का सौदा पटा या नहीं?

(घ) सौदेबाज़ी में कौन जीता? लाला या घोड़ेवाले?

(ङ) इस सौदे का लाला की बीवी पर क्या असर पड़ा?

(च) लाला ने अपनी पत्नी से क्या डींग मारी?

(छ) अंत में लाला और उसके परिवार वालों की क्या हालत हुई?

अमरकांत

अमरकांत का जन्म उत्तर प्रदेश के बलिया जिले के नागरा ग्राम में सन् 1925 ई. में हुआ था। माता-पिता का दिया नाम श्रीराम वर्मा है किंतु हिन्दी जगत में अमरकांत नाम से ही विख्यात हैं। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा अपने जिले में ही हुई। छात्र जीवन में उन्होंने 1942 के ***'भारत छोड़ो'*** आंदोलन में भाग लिया फलस्वरूप पढ़ाई रुक गई। बाद में सन् 1948 में उन्होंने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से बी.ए. पास किया।

शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् अमरकांत ने पत्रकार का जीवन अपनाया। सबसे पहले वे ***'सैनिक'*** साप्ताहिक में उप सम्पादक बने। फिर लखनऊ के साक्षरता निकेतन से जुड़ गए। इलाहाबाद वापस आकर उन्होंने दैनिक ***'अमृत पत्रिका', 'भारत'*** व मासिक ***'कहानी'*** पत्रिका में सम्पादकीय कार्य किया। आजकल वे पाक्षिक पत्रिका ***'मनोरमा'*** के संयुक्त सम्पादक हैं।

अमरकांत व्यवसाय की व्यस्तता के कारण कम लिख पाते हैं। लेकिन उनका अब तक का लेखन अत्यंत महत्वपूर्ण है। सन् 1955 में निकले ***'कहानी'*** पत्रिका के वृहद विशेषांक में छपी अपनी कहानी ***'डिप्टी कलक्टरी'*** से वे विख्यात हुए। अब तक उनके कई कहानी-संग्रह प्रकाश में आ चुके हैं—***'जिन्दगी और जोंक', 'देश के लोग', 'मौत का नगर'*** और ***'कुहासा'***। उनके प्रमुख उपन्यास हैं—***'सूखा पत्ता', 'पराई डाल का पंछी', 'सुख जीवी', 'बीच की दीवार'*** और ***'काले उजले दिन'***।

अमरकांत प्रेमचंद की परम्परा के सच्चे उत्तराधिकारी कथा लेखक हैं। प्रेमचंद के समान ही उनका लेखन सही अर्थों में भारतीय है। तरह-तरह के कहानी आंदोलनों से अलग रहकर अमरकांत अपनी कहानियों में अपने आसपास के जीवन की सच्ची तस्वीरें प्रस्तुत करते रहे हैं। सादगी और सफ़ाई उनकी कहानियों की विशेषता है। स्वाधीनता के बाद के भारतीय समाज के अंतर्विरोधों का जैसा जीवंत चित्रण अमरकांत की कहानियों में मिलता है वह अन्यत्र दुर्लभ है। इनकी कहानियाँ निम्न मध्यवर्ग के जीवन की सही तस्वीर प्रस्तुत करती हैं। भाषा की दृष्टि से उनकी कहानियों में स्वाभाविकता, सजीवता और सहज प्रवाह को देखा जा सकता है।

'बहादुर' कहानी अमरकांत के ***'मौत का नगर'*** कहानी-संग्रह से ली गई है। इसमें ऐसे बच्चों की मनोदशा का मार्मिक चित्रण किया गया है जो किसी कारण घरेलू नौकर बनने को मजबूर होते हैं और गृह स्वामिनी के दुर्व्यवहार के शिकार होते हैं। दिल बहादुर किस्म के बच्चे हमें अपने आसपास ही मिल जाएँगे। प्रायः ही घरेलू नौकरी करने वाले नेपाली बालकों को हम जानते हैं। उन पर सदैव चोर होने का शक किया जाता है। इस स्थिति का एक मानवीय पक्ष भी होता है जिस ओर हमारा ध्यान कम ही जाता है। यह कहानी उसी पक्ष की ओर हमारा ध्यान खींचती है। कहानी के माध्यम से जब हम दिल बहादुर को समझ पाते हैं तो हमारा मन दुख से भर जाता है और हम एक अवसाद तले भारी मन से दबे रह जाते हैं।

बहादुर

सहसा मैं काफी गंभीर हो गया था, जैसा कि उस व्यक्ति को हो जाना चाहिए, जिस पर एक भारी दायित्व आ गया हो। वह सामने खड़ा था और आंखों को बुरी तरह मलका रहा था। बारह-तेरह वर्ष की उम्र। ठिगना चकइठ शरीर, गोरा रंग और चपटा मुंह। वह सफ़ेद नेकर, आधी बांह की ही सफ़ेद कमीज़ और भूरे रंग का पुराना जूता पहने था। उसके गले में स्काउटों की तरह एक रुमाल बंधा था। उसको घेरकर परिवार के अन्य लोग खड़े थे। निर्मला चमकती दृष्टि से कभी लड़के को देखती और कभी मुझको और अपने भाई को। निश्चय ही वह पंच-बराबर हो गई थी।

उसको लेकर मेरे साले साहब आए थे। नौकर रखना कई कारणों से बहुत ज़रूरी हो गया था। मेरे सभी भाई और रिश्तेदार अच्छे ओहदों पर थे और उन सभी के यहां नौकर थे। मैं जब बहन की शादी में घर गया तो वहां नौकरों का सुख देखा। मेरी दोनों भाभियां रानी की तरह बैठकर चारपाइयां तोड़ती थीं, जबकि निर्मला को सवेरे से लेकर रात तक खटना पड़ता था। मैं ईर्ष्या से जल गया। इसके बाद नौकरी पर वापस आया तो निर्मला दोनों जून 'नौकर-चाकर' की माला जपने लगी। उसकी तरह अभागिन और दुखिया स्त्री और भी कोई इस दुनिया में होगी? वे लोग दूसरे होते हैं, जिनके भाग्य में नौकर का सुख होता है।...

पहले साले साहब से असाधारण विस्तार से उसका किस्सा सुनना पड़ा। वह एक नेपाली था, जिसका गांव नेपाल और बिहार की सीमा पर था। उसका बाप युद्ध में मारा गया था और उसकी मां सारे परिवार का भरण-पोषण करती थी। मां उसकी बड़ी गुस्सैल थी और उसको बहुत मारती थी। वह चाहती थी कि लड़का घर के काम-धाम में हाथ बंटाए, जबकि वह पहाड़ या जंगलों में निकल जाता और पेड़ों पर चढ़कर चिड़ियों के घोंसलों में हाथ डालकर उनके बच्चे पकड़ता या फल तोड़-तोड़कर खाता। कभी-कभी वह पशुओं को चराने के लिए ले जाता था। उसने एक बार उस भैंस को बहुत मारा, जिसको उसकी मां बहुत प्यार करती थी, और इसलिए जिससे वह बहुत चिढ़ता था। मार खाकर भैंस भागी-भागी उसकी मां के पास चली गई, जो कुछ दूरी पर एक खेत में काम कर रही

थी। मां का माथा ठनका। बेचारा बेज़बान जानवर चरना छोड़कर यहां क्यों आएगा? ज़रूर लौंडे ने इसको काफ़ी मारा है। वह गुस्से से पागल हो गई। जब लड़का आया तो मां ने भैंस की मार का काल्पनिक अनुमान करके एक डंडे से उसकी दुगनी पिटाई की और उसको वहीं कराहता हुआ छोड़कर घर लौट आई। लड़के का मन मां से फट गया और वह रातभर जंगल में छिपा रहा। जब सवेरा होने को आया तो वह घर पहुंचा और किसी तरह अंदर चोरी-चुपके घुस गया। फिर उसने घी की हंडिया में हाथ डालकर मां के रखे रुपयों में से दो रुपये निकाल लिए। अंत में नौ दो ग्यारह हो गया। वहां से छह मील दूरी पर बस-स्टेशन था, जहां गोरखपुर जानेवाली बस मिलती थी।

—तुम्हारा नाम क्या है?—मैंने पूछा।

—दिलबहादुर, सा'ब।

उसके स्वर में एक मीठी झनझनाहट थी। मुझे ठीक-ठीक याद नहीं कि मैंने उसको क्या हिदायतें दी थीं। शायद यह कि वह शरारतें छोड़कर ढंग से काम करे और घर को अपना घर समझे। इस घर में नौकर-चाकर को बहुत प्यार और इज़्ज़त से रखा जाता है। जो सब खाते-पहनते हैं, वही नौकर-चाकर खाते-पहनते हैं। अगर वह यहां रह गया तो ढंग-शऊर सीख जाएगा, घर के और लड़कों की तरह पढ़-लिख जाएगा और उसकी ज़िंदगी सुधर जाएगी। निर्मला ने उसी समय कुछ व्यावहारिक उपदेश दे डाले थे। इस मुहल्ले में बहुत तुच्छ लोग रहते हैं, वह न किसी के यहां जाए और न किसी का काम करे। कोई बाज़ार से कुछ लाने को कहे तो वह 'अभी आता हूं' कहकर अंदर खिसक जाए। उसको घर के सभी लोगों से सम्मान और तमीज़ से बोलना चाहिए। और भी बहुत-सी बातें। अंत में निर्मला ने बहुत ही उदारतापूर्वक लड़के के नाम से 'दिल' शब्द उड़ा दिया।

परंतु बहादुर बहुत ही हंसमुख और मेहनती निकला। उसकी वजह से कुछ दिनों तक हमारे घर में वैसा ही उत्साहपूर्ण वातावरण छाया रहा, जैसा कि प्रथम बार तोता-मैना या पिल्ला पालने पर होता है। सवेरे-सवेरे ही मुहल्ले के छोटे-छोटे लड़के घर के अंदर आकर खड़े हो जाते और उसको देखकर हंसते या तरह-तरह के प्रश्न करते। 'ऐ तुम लोग छिपकली को क्या कहते हो?' 'ऐ, तुमने शेर देखा है?' ऐसी ही बातें। उससे पहाड़ी गाने की फरमाइशें की जातीं। घर के लोग भी उससे इसी प्रकार की छेड़खानियां करते थे। वह जितना उत्तर देता था उससे अधिक हंसता था। सबको उसके खाने और नाश्ते की बड़ी फ़िक्र रहती।

निर्मला आंगन में खड़ी होकर पड़ोसियों को सुनाते हुए कहती थी—बहादुर, आकर नाश्ता क्यों नहीं कर लेते? मैं दूसरी औरतों की तरह नहीं हूं, जो नौकर-चाकर को तलती-भूनती हैं। मैं तो नौकर-चाकर को

अपने बच्चों की तरह रखती हूं। उन्होंने तो साफ़-साफ़ कह दिया है कि सौ, डेढ़-सौ महीनावारी उस पर भले ही खर्च हो जाए, पर तकलीफ़ उसको ज़रा भी नहीं होनी चाहिए। एक नेकर-कमीज़ तो उसी रोज़ लाए थे... और भी कपड़े बन रहे हैं...।

धीरे-धीरे वह घर के सारे काम करने लगा। सवेरे ही उठकर वह बाहर नीम के पेड़ से दातुन तोड़ लाता था। वह हाथ का सहारा लिए बिना, कुछ दूर तक तने पर दौड़ते हुए चढ़ जाता। मिनटभर में वह पेड़ की पुलुई पर नज़र आता। निर्मला छाती पीटकर कहती थी—अरे रीछ-बंदर की जात, कहीं गिर गया तो बड़ा बुरा होगा। वह घर की सफ़ाई करता, कमरों में पोंछा लगाता, अंगीठी जलाता, चाय बनाता और पिलाता। दोपहर में कपड़े धोता और बरतन मलता। वह रसोई बनाने की भी ज़िद करता, पर निर्मला स्वयं सब्ज़ी और रोटी बनाती। निर्मला को उसकी बहुत फ़िक्र रहती थी। उसकी उन दिनों तबीयत ठीक नहीं रहती थी, इसलिए वह कुछ दवा ले रही थी। बहादुर उसको कोई काम करते देखकर कहता था—माता जी, मेहनत न करो। तकलीफ़ बढ़ जाएगी। वह कोई भी काम करता होता, समय होने पर हाथ धोकर भालू की तरह दौड़ता हुआ कमरे में जाता और दवाई का डब्बा निर्मला के सामने लाकर रख देता।

जब मैं शाम को दफ्तर से आता, तो घर के सभी लोग मेरे पास आकर दिनभर के अपने अनुभव सुनाते थे। बाद में वह भी आता था। वह एक बार मेरी ओर देखकर सिर झुका लेता और धीरे-धीरे मुस्कराने लगता। वह किसी बहुत ही मामूली घटना की रिपोर्ट देता— बाबू जी, बहन जी की एक सहेली आयी थीं। या बाबू जी, भैया सिनेमा गया था। इसके बाद वह इस तरह हंसने लगता था, गोया बहुत ही मज़ेदार बात कह दी हो। उसकी हंसी बड़ी कोमल और मीठी थी, जैसे फूल की पंखुड़ियां बिखर गई हों। मैं उससे बातचीत करना चाहता था, पर ऐसी इच्छा रहते हुए भी मैं जान-बूझकर बहुत गंभीर हो जाता था और दूसरी ओर देखने लगता था।

निर्मला कभी-कभी उससे पूछती थी—बहादुर, तुमको मां की याद आती है?

—नहीं।

—क्यों?

—वह मारती क्यों थी—इतना कहकर वह खूब हंसता था, जैसे मार खाना खुशी की बात हो।

—तब तुम अपना पैसा मां के पास कैसे भेजने को कहते हो?

—मां-बाप का कर्ज़ा तो जन्मभर भरा जाता है। —वह और भी हंसता था।

निर्मला ने उसको एक फटी-पुरानी दरी दे दी थी। घर से वह एक चादर भी ले आया था। रात को काम-धाम करने के बाद वह भीतर के बरामदे

में एक टूटी हुई बंसखट पर अपना बिस्तर बिछाता था। वह बिस्तरे पर बैठ जाता और अपनी जेब में से कपड़े की एक गोल-सी नेपाली टोपी निकालकर पहन लेता, जो बाईं ओर काफ़ी झुकी रहती थी। फिर एक छोटा-सा आइना निकालकर बंदर की तरह उसमें अपना मुंह देखता था। वह बहुत ही प्रसन्न नज़र आता था। इसके बाद कुछ और भी चीज़ें उसकी ज़ेब से निकलकर उसके बिस्तरे पर सज जाती थीं—कुछ गोलियां, पुराने ताश की एक गड्डी, कुछ खूबसूरत पत्थर के टुकड़े, ब्लेड, कागज़ की नावें। वह कुछ देर तक उनसे खेलता था। उसके बाद वह धीमे-धीमे स्वर में गुनगुनाने लगता था। उन पहाड़ी गानों का अर्थ हम समझ नहीं पाते थे, पर उनकी मीठी उदासी सारे घर में फैल जाती, जैसे कोई पहाड़ की निर्जनता में अपने किसी बिछुड़े हुए साथी को बुला रहा हो।

दिन मज़े में बीतने लगे। बरसात आ गई थी। पानी रुकता था और बरसता था। मैं अपने को बहुत ऊंचा महसूस करने लगा था। अपने परिवार और संबंधियों के बड़प्पन तथा शान-बान पर मुझे सदा गर्व रहा है। अब मैं मुहल्ले के लोगों को पहले से भी तुच्छ समझने लगा। मैं किसी से सीधे मुंह बात नहीं करता। किसी की ओर ठीक से देखता भी नहीं था। दूसरे के बच्चों को मामूली-सी शरारत पर डांट-डपट देता। कई बार पड़ोसियों को सुना चुका था—जिसके पास कलेजा है, वही आजकल नौकर रख सकता है। घर के लोगों की तरह रहता है। निर्मला भी सारे मुहल्ले में शुभ सूचना दे आई थी—आधी तनखाह तो नौकर पर ही ख़र्च हो रही है, पर रुपया-पैसा कमाया किसलिए जाता है? ये तो कई बार कह चुके थे कि तुम्हारे लिए दुनिया के किसी कोने से नौकर ज़रूर लाऊंगा... वही हुआ।

निस्संदेह बहादुर की वजह से सबको खूब आराम मिल रहा था। घर खूब साफ़ और चिकना रहता। कपड़े चमाचम सफ़ेद। निर्मला की तबीयत भी काफ़ी सुधर गई। अब कोई एक तिनका भी न टसकाता था। किसी को मामूली-से-मामूली काम करना होता, तो वह बहादुर को आवाज़ देता। बहादुर, एक गिलास पानी', 'बहादुर, पेंसिल नीचे गिरी है, उठाना।' इसी तरह की फ़रमाइशें। बहादुर घर में फिरकी की तरह नाचता रहता। सभी रात में पहले ही सो जाते थे और सवेरे आठ बजे के पहले न उठते थे।

मेरा बड़ा लड़का किशोर काफ़ी शान-शौकत और रोब-दाब से रहने का क़ायल था और उसने बहादुर को अपने कड़े अनुशासन में रखने की आवश्यकता महसूस कर ली थी। फलतः उसने अपने सभी काम बहादुर को सौंप दिए। सवेरे उसके जूते में पालिश लगनी चाहिए। कालेज जाने के ठीक पहले साइकिल की सफ़ाई ज़रूरी थी। रोज़ ही उसके कपड़ों की धुलाई और इस्त्री होनी चाहिए। और रात में सोते समय वह नित्य बहादुर

से अपने शरीर की मालिश कराता और मुक्की भी लगवाता। पर इतनी सारी फ़रमाइशों की पूर्ति में कभी-कभी कोई गड़बड़ी भी हो जाती। जब ऐसा होता, किशोर गर्जन-तर्जन करने लगता, उसको बुरी-बुरी गालियां देता और उस पर हाथ छोड़ देता। मार खाकर बहादुर एक कोने में खड़ा हो जाता—चुपचाप।

—देख बे,—किशोर चेतावनी देता—मेरा काम सबसे पहले होना चाहिए। अगर एक काम भी छूटा तो मारते-मारते हुलिया टाइट कर दूंगा। साला, कामचोर, करता क्या है तू? बैठा-बैठा खाता है। रोज़ ही कोई-न-कोई ऐसी बात होने लगी, जिसकी रिपोर्ट पत्नी मुझे देती थी। मैंने किशोर को मना किया, पर वह नहीं माना तो मैंने यह सोचकर छोड़ दिया कि थोड़ा-बहुत तो यह चलता ही रहता है। फिर एक हाथ से ताली कहां बजती है? बहादुर भी बदमाशी करता होगा। पर एक दिन जब मैं दफ्तर से आया तो मैंने किशोर को एक डंडे से बहादुर की पिटाई करते हुए देखा। निर्मला कुछ दूरी पर खड़ी होकर 'हां-हां' करती हुई मना कर रही थी।

मैंने किशोर को डांटकर अलग किया। कारण यह था कि शाम को साइकिल की सफ़ाई करना भूल गया था। किशोर ने उसको मारा तथा गालियां दीं तो उसने उसका काम करने से ही इनकार कर दिया।

—तुम साइकिल साफ़ क्यों नहीं करते!—मैंने उससे कड़ाई से पूछा।

—बाबू जी, भैया ने मेरे बाप को क्यों लाकर खड़ा किया? —वह रोते हुए बोला।

मैं जानता था कि किशोर उसको और भी भद्दी गालियां देता था, लेकिन आज उसने 'सूअर का बच्चा' कहा था, जो उसे बरदाश्त न हुआ। निस्संदेह वह गाली उसके बाप पर पड़ती थी। मुझे कुछ हंसी आ गई। खैर, किशोर के व्यवहार को अच्छा नहीं कहा जा सकता, पर गृहस्वामी होने के कारण मुझ पर कुछ और गंभीर दायित्व भी थे।

मैंने उसे समझाया—बहादुर, ये आदतें ठीक नहीं। तुम ठीक से काम करोगे तो तुमको कोई कुछ नहीं कहेगा। मेहनत बहुत अच्छी चीज़ है, जो उससे बचने की कोशिश करता है, वह कुछ भी नहीं कर सकता। रूठना-फूलना मुझे सख़्त नापसंद है। तुम तो घर के लड़के की तरह हो। घर के लड़के मार नहीं खाते? हम तुमको जिस सुख-आराम से रखते हैं, वह कोई क्या रखेगा? जाकर दूसरे घरों में देखो तो पता लगे! नौकर-चाकर भरपेट भोजन के लिए तरसते रहते हैं। चलो, सब खत्म हुआ, अब काम-धाम करो।

वह चुपचाप सुनता रहा। फिर हाथ-मुंह धोकर काम करने लगा। जल्दी ही वह प्रसन्न भी हो गया। रात में सोते समय वह अपनी टोपी पहनकर देर तक गाता रहा।

लेकिन कुछ दिनों बाद एक और भी गड़बड़ी शुरू हुई। निर्मला बहुत पतली-पतली रोटियां सेंकती थी, इसलिए वह रोटी बनाने का काम कभी भी बहादुर से नहीं लेती थी। लेकिन मुहल्ले की किसी औरत ने उसे यह सिखा दिया कि परिवार के लिए रोटियां बनाने के बाद वह बहादुर से कहे कि वह अपनी रोटी खुद बना लिया करे, नहीं तो नौकर-चाकर की आदतें ख़राब हो जाती हैं, महीन खाने से उनकी आदत बिगड़ जाती है।

यह बात निर्मला को जंच गई थी और रात में उसने ऐसा ही प्रयोग किया। वह अपनी रोटियां बनाकर चौके में से उठ गई। बहादुर का मुंह उतर गया। वह चूल्हे के पास सिर झुकाकर चुपचाप खड़ा रहा।

—क्या हो गया, रे?—निर्मला ने पूछा।

वह कुछ नहीं बोला।

—चल, चुपचाप बना अपनी रोटियां। तू सोचता है कि मैं तुझे पतली-पतली, नरम-नरम रोटियां सेंककर खिलाऊंगी? तू कोई घर का लड़का है? नौकर-चाकर तो अपना बनाकर खाते ही रहते हैं। तीता तो उनको इसलिए लग रहा है कि सारे घर के लिए मैंने रोटियां बनाईं, इनको अलग करके इनके साथ भेद क्यों किया। वाह रे, इसके पेट में तो लंबी दाढ़ी है। समझ जा, रोटियां नहीं सेंकेगा तो भूखा रहेगा।

पर बहादुर उसी तरह खड़ा रहा तो निर्मला का गुस्से से बुरा हाल हो गया। उसने लपककर उसके माथे पर दो-चार थप्पड़ जड़ दिए—सूअर कहीं के! इसीलिए तुझे किशोर मारता है। इसी वजह से तेरी मां भी मारती होगी। चल, बना रोटी...

—मैं नहीं बनाऊंगा... मेरी मां भी सारे घर की रोटियां बनाकर मुझसे रोटी सेंकवाती थी—वह रोने लगा।

—तो क्या मैं तेरी मां हूं कि तू मुझसे ज़िद कर रहा है? घर के लड़कों के बराबर बन रहा है? मारते-मारते मुंह रंग दूंगी।

पर उसने अपने लिए रोटी नहीं बनाई। मुझे भी बड़ा गुस्सा आया। मैंने उसको डांटा और समझाया। पर वह नहीं माना। रातभर वह भूखा ही रहा।

पर सवेरे उठकर वह पहले की तरह ही हंसने लगा। उसने अंगीठी जलाकर अपने लिए रोटियां सेंकीं। अपनी बनाई मोटी और भद्दी रोटियों को देखकर वह खिलखिलाने लगा। फिर रात की बची हुई सब्ज़ी से उसने खाना खा लिया।

लेकिन निर्मला का भी हाथ खुल गया था। वह उससे कुछ चिढ़ भी गई थी। अब बहादुर से कोई भी ग़लती होती तो वह उस पर हाथ चला देती। उसको मारनेवाले अब घर में दो व्यक्ति हो गए थे और कभी-कभी एक ग़लती के लिए उसको दोनों मारते।

बरसात बीत गई थी। आकाश दर्पण की तरह स्वच्छ दिखाई देता। मैंने बहादुर की मां के पास चिट्ठी लिखी थी कि उसका लड़का मेरे पास मज़े में है और मैं उसकी तनखाह के पैसे उसके पास भेज दिया करूंगा, लेकिन कई महीने बाद भी उधर से कोई जवाब नहीं आया था। मैंने बहादुर से कह दिया था कि उसका पैसा यहां जमा रहेगा, जब वह घर जाएगा तो लेता जाएगा।

पर अब बहादुर की भूल-ग़लतियां अधिक होने लगी थीं। शायद इसका कारण मारपीट और गाली-गलौज हो। मैं कभी-कभी इसको रोकना चाहता, फिर यह सोचकर चुप लगा जाता कि नौकर-चाकर तो मार खाते ही रहते हैं।

एक दिन रविवार को मेरी पत्नी के एक रिश्तेदार आए। वह बीवी-बच्चों के साथ थे। वह अपने किसी खास संबंधी के यहां आए थे, तो यहां भी भेंट-मुलाकात करने के लिए चले आए थे। घर में बड़ी चहल-पहल मच गई। मैं बाज़ार से रोहू मछली और देहरादूनी चावल ले आया। नाश्ता-पानी के बाद बातों की जलेबी छनने लगी। पर इसी समय एक घटना हो गई।

अचानक उस रिश्तेदार की पत्नी नीचे फ़र्श पर झुककर देखने लगी। फिर उन्होंने चारपाई के नीचे झांककर देखा। अंत में कमरे के अंदर गई और फ़र्श पर पड़े हुए काग़ज़ों को उठाकर जांच-पड़ताल करने लगी।

—क्या बात है?—मैंने पूछा।

रिश्तेदार की पत्नी ज़बरदस्ती मुस्कराकर मज़बूरी से सिर हिलाते हुए बोली—क्या बताएं...? ग्यारह रुपए साड़ी के खूंट से निकालकर यहीं चारपाई पर रखे... पर वे मिल नहीं रहे हैं...

—आपको ठीक याद है न...?

—हां-हां—खूब अच्छी तरह याद है। ये रुपये मैंने खूंट में बांधकर रखे थे। रिक्शेवाले को देने के लिए खूंट खोला ही था, फिर वे रुपए चारपाई पर रख दिए थे कि चार रुपये की मिठाई मंगा लूंगी और कुछ बच्चों के हाथ पर रख दूंगी। रास्ते में कोई ढंग की दुकान नहीं मिली थी, नहीं तो उधर से ही लाती। किसी के यहां खाली हाथ जाने में अच्छा भी नहीं लगता। बताइए, अब तो मैं कहीं की न रही।

फिर मेरी ओर झुककर धीमे स्वर में कहा—जरा उससे पूछिए न! वह इधर आया था। कुछ देर तक वह यहां खड़ा रहा, फिर तेज़ी से बाहर चला गया था।

—अरे नहीं, वह ऐसा नहीं है,—मैंने कहा।

—*यू डू नाट नो—दीज़ पीपुल आर एक्सपर्ट इन दिस आर्ट*— रिश्तेदार ने कहा।

मैंने बहादुर की ओर तिरछी दृष्टि से देखा। वह सिर झुकाकर आटा गूंध रहा था। उसके चेहरे पर संतुष्टि एवं प्रफुल्लता थी। उसने ऐसा काम तो कभी नहीं किया, बल्कि जब कभी उसने दो-चार आने इधर-उधर पड़े देखे, तो उठाकर निर्मला के हाथ में दे दिए थे। पर किसी के दिल की बात कोई कैसे जान सकता है? न मालूम अचानक मुझे क्या हो गया और मैं गुस्से में आ गया।

—बहादुर!—मैंने कड़े स्वर में कहा।

—जी, बाबू जी।

—इधर आओ।

वह आकर खड़ा हो गया।

—तुमने यहां से रुपए उठाए थे?

—जी नहीं, बाबू जी! —उसने निर्भय उत्तर दिया।

—ठीक-ठीक बताओ... मैं बुरा नहीं मानूंगा।

—नहीं, बाबू जी। मैं लेता, तो बता देता।

—तुम यहां खड़े नहीं थे?—रिश्तेदार की पत्नी ने कहा—फिर तेजी से बाहर चले गए। देखो भैया, सच-सच बता दो। मिठाई ख़रीदने और बच्चों को देने के लिए ये रुपए रखे थे। मैं तो बुरी फंसी। अब वापस जाने के लिए रिक्शे के भी पैसे नहीं।

—मैं तो बाहर नमक लेने गया था।

—सच-सच बता बहादुर। अगर नहीं बताएगा तो बहुत पीटूंगा और पुलिस के सुपुर्द कर दूंगा। —मैं चिल्ला पड़ा।

—मैंने नहीं लिया, बाबू जी। —बहादुर का मुंह काला पड़ गया था।

पता नहीं मुझे क्या हो गया। मैंने सहसा उछलकर उसके गाल पर एक तमाचा जड़ दिया। मैं आशा कर रहा था कि ऐसा करने से वह बता देगा। तमाचा खाकर वह गिरते-गिरते बचा। उसकी आंखों से आंसू गिरने लगे।

—मैंने नहीं लिया...

इसी समय रिश्तेदार साहब ने एक अजीब हरकत की। बोले—अच्छा छोड़िए, इसको पुलिस के पास ले जाता हूं। —इतना कहकर उन्होंने बहादुर का हाथ पकड़ लिया और उसको दरवाज़े की ओर घसीटकर ले गए। पर दरवाज़े के पास उससे धीरे से बोले—देखो, तुम मुझे बता दो... मैं कुछ नहीं करूंगा, बल्कि तुमको इनाम में दो रुपए दे दूंगा।

पर बहादुर ने इनकार कर दिया। इसके बाद रिश्तेदार साहब दो-तीन बार उसको दरवाज़े की ओर खींचकर ले गए, जैसे पुलिस को देने ही जा रहे हैं। लेकिन आगे बढ़कर वह रुक जाते और धीमे-धीमे शब्दों में पूछताछ करने लगते।

अंत में हारकर उन्होंने उसको छोड़ दिया और वापस आकर चारपाई पर बैठते हुए हंसकर बोले—जाने दीजिए... यह सब घाघ होते हैं। किसी

झाड़ी-वाड़ी में छिपा आया होगा या जमीन में गाड़ आया होगा। मैं तो इन सबों को खूब जानता हूं। भालू-बंदर से कम थोड़े होते हैं ये। चलिए, इतना नुकसान लिखा था।

इसके बाद निर्मला ने भी उसको डराया-धमकाया और दो-चार तमाचे जड़ दिए, पर वह 'नहीं-नहीं' करता रहा।

इस घटना के बाद बहादुर काफ़ी डांट-मार खाने लगा। घर के सभी लोग उसको कुत्ते की तरह दुरदुराया करते। किशोर तो जैसे उसकी जान के पीछे पड़ गया था। वह उदास रहने लगा और काम में लापरवाही करने लगा।

एक दिन मैं दफ़्तर से विलंब से आया। निर्मला आंगन में चुपचाप सिर पर हाथ रखकर बैठी थी। अन्य लड़कों का पता नहीं था, केवल लड़की अपनी मां के पास खड़ी थी। अंगीठी अभी नहीं जली थी। आंगन गंदा पड़ा था। बरतन बिना मले हुए रखे थे। सारा घर जैसे काट रहा था।

—क्या बात है? —मैंने पूछा।

—बहादुर भाग गया।

—क्यों?

—पता नहीं। आज तो कुछ हुआ भी नहीं था। सवेरे से ही बड़ा प्रसन्न था। हमेशा 'माता जी माता जी' किए रहा। दोपहर में खाना खाया। उसके बाद आंगन से सिल-बट्टा लेकर बरामदे में रखने जा रहा था कि सिल हाथ से छूटकर गिर गई और दो टुकड़े हो गई। शायद इसी डर से वह भाग गया कि लोग मारेंगे। पर मैं इसके लिए उसको थोड़े कुछ कहती? क्या बताऊं, मेरी किस्मत में आराम ही नहीं...

—कुछ ले गया?

—यही तो अफसोस है। कोई भी सामान नहीं ले गया। उसके कपड़े, उसका बिस्तरा, उसके जूते—सभी छोड़ गया है। पता नहीं, उसने हमें क्या समझा? अगर वह कहता तो मैं उसे रोकती थोड़े? बल्कि उसको खूब अच्छी तरह पहना-ओढ़ाकर भेजती, हाथ में उसकी तनखाह के रुपए रख देती। दो-चार रुपए और अधिक दे देती। पर वह तो कुछ ले ही नहीं गया...

—और वे ग्यारह रुपए?

—अरे वह सब झूठ है। मैं तो पहले ही जानती थी कि वे लोग बच्चों को कुछ देना नहीं चाहते, इसलिए अपनी ग़लती और लाज छिपाने के लिए प्रपंच रच रहे हैं। उन लोगों को क्या मैं जानती नहीं? कभी उनके रुपए रास्ते में गुम हो जाते हैं कभी वे ग़लती से घर ही पर छोड़ आते हैं। मेरे कलेजे में तो कुछ हौंड़ रहा है। किशोर को भी बड़ा अफसोस है। उसने सारा शहर छान मारा, पर बहादुर नहीं मिला। किशोर आकर कहने लगा—अम्मां, एक बार भी अगर बहादुर आ जाता तो मैं उसको पकड़

लेता और कभी जाने न देता। उससे माफ़ी मांग लेता और कभी नहीं मारता। सच, अब ऐसा नौकर कभी नहीं मिलेगा। कितना आराम दे गया है! अगर वह सब कुछ चुराकर ले गया होता तो संतोष हो जाता।

निर्मला आंखों पर आंचल रखकर रोने लगी। मुझे बड़ा क्रोध आया। मैं चिल्लाना चाहता था, पर भीतर-ही-भीतर कलेजा जैसे बैठ रहा हो। मैं वहीं चारपाई पर सिर झुकाकर बैठ गया। मुझे एक अजीब-सी लघुता का अनुभव हो रहा था। यदि मैं न मारता, तो शायद वह न जाता।

मैंने आंगन में नज़र दौड़ाई। 'एक ओर स्टूल पर उसका बिस्तरा रखा था। अलगनी पर उसके कुछ कपड़े टंगे थे। स्टूल के नीचे वह भूरा जूता था, जो मेरे साले साहब के लड़के का था। मैं उठकर अलगनी के पास गया और उसके नेकर की जेब में हाथ डालकर उसका सामान निकालने लगा—वही गोलियां, पुराने ताश की गड्डी, खूबसूरत पत्थर, ब्लेड, काग़ज़ की नावें...

प्रश्न अभ्यास

(1) नौकर रखना क्यों बहुत ज़रूरी हो गया था?

(2) नीचे लिखे वाक्य को पढ़कर प्रश्नों के उत्तर दो।

"उसको घेरकर परिवार के अन्य लोग खड़े थे।"

(क) किसको घेरकर परिवार के लोग खड़े थे? उसकी शक्ल-सूरत और वेश-भूषा कैसी थी?

(ख) उसे कौन लाया था? साले साहब ने विस्तार से कौन-सा किस्सा सुनाया?

(ग) बहादुर को घेरकर लोग क्यों खड़े थे? वह कहां से आया था?

(3) निर्मला ने दिलबहादुर का नाम बहादुर क्यों कर दिया?

(4) बहादुर को लेखक ने क्या हिदायतें दीं?

(5) प्रारम्भ में सबको बहादुर के खाने और नाश्ते की बड़ी फिक्र रहती थी। क्योंकि—

(क) तोता-मैना या पिल्ला पालने पर घर में जैसा वातावरण हो जाता हे, वैसा ही उत्साहपूर्ण वातावरण परिवार में आ गया था।

(ख) सब लोग बहादुर से बड़ा स्नेह करते थे।

(ग) सबको डर था कि उपेक्षा करने पर बहादुर घर में टिकेगा नहीं।

सही उत्तर पर √ निशान लगाओ।

(6) नीचे लिखे वाक्य पढ़कर प्रश्नों के उत्तर दो।

"निस्संदेह बहादुर की वजह से सबको खूब आराम मिल रहा था।"

(क) बहादुर की वजह से घर भर को खूब आराम किस प्रकार मिल रहा था?

(ख) बहादुर के आने के बाद मुहल्ले के लोगों के प्रति लेखक का व्यवहार कैसा हो गया था?

(ग) बहादुर के बहाने से निर्मला पड़ोसिनों को क्या सुनाया करती थी?

(घ) बहादुर के आने के बाद किशोर किस बात की आवश्यकता महसूस कर रहा था?

(7) रात को घर का काम निपटाने के बाद बहादुर अपनी दरी पर बैठकर क्या करता था? वहां वह कैसे खेलता था?

(8) निर्मला का बहादुर के प्रति व्यवहार धीरे-धीरे क्यों बदल गया?

(9) बहादुर रातभर भूखा क्यों रहा?

(10) रिश्तेदार के मेहमान बन कर आने पर कौन-सी घटना घटी?

(11) क्या बहादुर ने मेहमान के ग्यारह रुपए चुराए थे?

(12) दस ऐसे विशेषण शब्द लिखो जो बहादुर के लिए प्रयुक्त हो सकते हों। जैसे—हंसमुख, मेहनती...

(13) नीचे लिखा वाक्य पढ़कर प्रश्नों के उत्तर दो।

"निर्मला आंगन में चुपचाप सिर पर हाथ रखकर बैठी थी।"

(क) निर्मला इस प्रकार क्यों बैठी थी?

(ख) उस समय घर का वातावरण कैसा हो रहा था?

(ग) बहादुर घर से क्यों चला गया था?

(घ) बहादुर के भाग जाने पर लेखक की क्या प्रतिक्रिया हुई?

(14) बहादुर के चुपचाप चले जाने से उसकी किस भावना का पता चलता है?

(15) भागते समय बहादुर घर से कुछ चुरा कर क्यों नहीं ले गया?

(16) निर्मला और किशोर ने किन शब्दों में नौकर के भाग जाने पर अपना पछतावा प्रकट किया?

(17) इस कहानी का 'बहादुर' शीर्षक कैसा लगता है? नीचे लिखे शीर्षकों में कोई शीर्षक ज़्यादा अच्छा लगे, तो उस पर √ लगाओ। या कोई अन्य शीर्षक सुझाओ।

(क) स्वाभिमानी बालक

(ख) पिंजरे के पंछी की मुक्ति

(ग) पलायन

(घ) चल उड़ जा रे पंछी!

हरिशंकर परसाई

हरिशंकर परसाई का जन्म होशंगाबाद जिले के जमानी गांव में 22 अगस्त, 1922 को हुआ था। एम.ए. करने के बाद इन्होंने अनेक वर्षों तक जबलपुर में एक कालेज में छात्रों को पढ़ाया। फिर वहीं ***'वसुधा'*** नामक पत्रिका का सम्पादन करने लगे। अपने साहित्य-सृजन में नौकरी को बाधा पाकर इन्होंने अध्यापन या सम्पादन का काम छोड़ दिया और स्वतंत्र लेखन करने लगे। आजकल आप जबलपुर में रहते हुए प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में नियमित रूप से हास्य-व्यंग्य लेखन का कार्य कर रहे हैं।

हरिशंकर परसाई मुख्यतः व्यंग्य लेखक हैं। हिन्दी में व्यंग्य-लेखन कम हुआ है। परसाई जी इस अभाव की पूर्ति कर रहे हैं। इनके व्यंग्य की यह विशेषता है कि इनका व्यंग्य केवल मनोरंजन के लिए नहीं होता। इनका व्यंग्य पाठकों का ध्यान निरंतर व्यक्ति और समाज की जीवन को दूभर बनाने वाली कमज़ोरियों एवं विसंगतियों की ओर खींचता है। इन्होंने सामाजिक और राजनीतिक जीवन में फैले हुए भ्रष्टाचार तथा अन्याय पर अपने व्यंग्य द्वारा करारी चोट की है।

हरिशंकर परसाई का लेखन विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित रूप में बिखरा हुआ है। अब तक इनकी लगभग पच्चीस पुस्तकें छप चुकी हैं जिनमें प्रमुख हैं— ***'जैसे उनके दिन फिरे'***, ***'हंसते हैं रोते हैं'***, ***'तब की बात और थी'***, ***'भूत के पांव पीछे'***, ***'बेइमानी की परत'***, ***'पगडंडियों का ज़माना'***, ***'शिकायत मुझे भी है'***, ***'और अंत में'***, ***'ठिठुरता हुआ गणतंत्र'***, ***'विकलांग श्रद्धा का दौर'*** और ***'तिरछी रेखाएं'***। इन्होंने दो उपन्यास भी लिखे हैं— ***'तट की खोज'*** और ***'रानी नागफनी की कहानी'***।

हरिशंकर परसाई की रचना ***'भोलाराम का जीव'*** बंगला लेखक परशुराम की याद दिलाती है। पौराणिक चरित्रों के माध्यम से आधुनिक जीवन की बात करना परशुराम की विशेषता थी। लेकिन उन चरित्रों के माध्यम से व्यंग्य कर आधुनिक जीवन की विडंबनाएं उद्घाटित करना परसाई की अतिरिक्त विशेषता है। नारद जी के माध्यम से भोलाराम की रुकी हुई पेंशन की कथा और सरकारी बाबुओं में फैले भ्रष्टाचार के बारे में इस कहानी में बताया गया है। यह भ्रष्टाचार गरीब की मुसीबत में उसे लात ही मार सकता है, उसे उबार नहीं सकता। कहानी प्रारम्भ से अंत तक व्यंग्य से भरी हुई है। व्यंग्य भी अपनी सामाजिक स्थितियों की विडंबना पर है जो सर्वत्र व्याप्त है।

भोलाराम का जीव

ऐसा कभी नहीं हुआ था···?

धर्मराज लाखों वर्षों से असंख्य आदमियों को कर्म और सिफारिश के आधार पर स्वर्ग या नरक में निवास-स्थान 'अलाट' करते आ रहे थे—पर ऐसा कभी नहीं हुआ था।

सामने बैठे चित्रगुप्त बार-बार चश्मा पोंछ, बार-बार थूक से पन्ने पलट, रजिस्टर देख रहे थे। गलती पकड़ में नहीं आ रही थी। आखिर उन्होंने खीझकर रजिस्टर इतने जोर से बन्द किया कि मक्खी चपेट में आ गई। उसे निकालते हुए बोले, "महाराज, रिकार्ड सब ठीक है। भोलाराम के जीव ने पांच दिन पहले देह त्यागी और यमदूत के साथ इस लोक के लिए रवाना भी हुआ, पर यहां अभी तक नहीं पहुंचा।"

धर्मराज ने पूछा—"और वह दूत कहां है?"

"महाराज वह भी लापता है।"

उसी समय द्वार खुले और एक यमदूत बदहवाश-सा वहां आया। उसका मौलिक कुरूप चेहरा परिश्रम, परेशानी और भय के कारण और भी विकृत हो गया था। उसे देखते ही चित्रगुप्त चिल्ला उठे—"अरे तू कहां रहा इतने दिन? भोलाराम का जीव कहां है?"

यमदूत हाथ जोड़कर बोला—"दयानिधान, मैं कैसे बतलाऊं कि क्या हो गया। आज तक मैंने धोखा नहीं खाया था, पर इस बार भोलाराम का जीव मुझे चकमा दे गया। पांच दिन पहले जब जीव ने भोलाराम की देह त्यागा, तब मैंने उसे पकड़ा और इस लोक की यात्रा आरंभ की। नगर के बाहर ज्यों ही मैं उसे लेकर एक तीव्र वायुतरंग पर सवार हुआ, त्यों ही वह मेरे चंगुल से छूटकर न जाने कहां गायब हो गया। इन पांच दिनों में मैंने सारा ब्रह्माण्ड छान डाला, पर उसका कहीं पता नहीं चला।"

धर्मराज क्रोध से बोले—''मूर्ख, जीवों को लाते-लाते बूढ़ा हो गया फिर भी एक मामूली बूढ़े आदमी के जीव ने तुझे चकमा दे दिया!''

दूत ने सिर झुकाकर कहा—''महाराज, मेरी सावधानी में बिल्कुल कसर नहीं थी। मेरे इन अभ्यस्त हाथों से अच्छे-अच्छे अत्ते खां भी नहीं छूट सके, पर इस बार तो इन्द्रजाल ही हो गया।''

चित्रगुप्त ने कहा—''महाराज, आजकल पृथ्वी पर इस प्रकार का व्यापार बहुत चला है। लोग दोस्तों को फल भेजते हैं और वे रास्ते में ही रेलवे वाले उड़ा लेते हैं। होज़री के पार्सलों के मोजे रेलवे अफसर पहनते हैं। मालगाड़ी के डिब्बे-के-डिब्बे रास्ते में कट जाते हैं। एक बात और हो रही है। राजनीतिक दलों के नेता विरोधी नेता को उड़ाकर कहीं बन्द कर देते हैं। कहीं भोलाराम के जीव को भी किसी विरोधी ने, मरने के बाद भी खराबी करने के लिए नहीं उड़ा दिया?''

धर्मराज ने व्यंग्य से चित्रगुप्त की ओर देखते हुए कहा—''तुम्हारी भी रिटायर होने की उम्र आ गई। भला भोलाराम जैसे नगण्य, दीन आदमी से किसी को क्या लेना-देना?''

इसी समय कहीं से घूमते-घामते नारद मुनि वहां आ गये। धर्मराज को गुमसुम बैठे देख बोले—''क्यों धर्मराज, कैसे चिन्तित बैठे हैं? क्या नरक में निवास-स्थान की समस्या अभी हल नहीं हुई?''

धर्मराज ने कहा—''वह समस्या तो कभी की हल हो गई, मुनिवर! नरक में पिछले सालों में बड़े गुणी कारीगर आ गए हैं। कई इमारतों के ठेकेदार हैं, जिन्होंने पूरे पैसे लेकर रद्दी इमारतें बनवाईं। बड़े-बड़े इंजीनियर आ गये हैं, जिन्होंने ठेकेदारों से मिलकर भारत की पंचवर्षीय योजनाओं का पैसा खाया। ओवरसियर हैं, जिन्होंने उन मजदूरों की हाजिरी भरकर पैसा हड़पा, जो कभी काम पर गए ही नहीं। इन्होंने बहुत जल्दी नरक में कई इमारतें टांग दी हैं। यह समस्या तो हल हो गई। भोलाराम नाम के एक आदमी की पांच दिन पहले मृत्यु हुई। उसके जीव को यह दूत यहां ला रहा था कि जीव इसे रास्ते में चकमा देकर भाग गया। इसने सारा ब्रह्माण्ड छान डाला, पर वह कहीं नहीं मिला। अगर ऐसा होने लगा, तो पाप-पुण्य का भेद ही मिट जाएगा।''

नारद ने पूछा—''उस पर इन्कम-टैक्स तो बकाया नहीं था? हो सकता है, उन लोगों ने रोक लिया हो।''

चित्रगुप्त ने कहा—''इन्कम होती तो टैक्स होता···? भुखमरा था।''

नारद बोले—''मामला बड़ा दिलचस्प है। अच्छा, उसका नाम-पता तो बताओ। मैं अभी पृथ्वी पर जाता हूं।''

चित्रगुप्त ने रजिस्टर देखकर बतलाया—''भोलाराम नाम था उसका। जबरपुर शहर के धमापुर मोहल्ले में नाले के किनारे एक डेढ़ कमरे के टूटे-फूटे मकान में वह परिवार समेत रहता था। उसके एक स्त्री थी, दो

लड़के और एक लड़की। उम्र लगभग पैंसठ साल। सरकारी नौकर था, पांच साल पहले रिटायर हो गया था। मकान का किराया उसने एक साल से नहीं दिया था, इसीलिए मकान-मालिक उसे निकालना चाहता था। इतने में भोलाराम ने संसार ही छोड़ दिया। आज पांचवां दिन है। बहुत संभव है कि अगर मकान-मालिक, वास्तविक मकान-मालिक है, तो उसने भोलाराम के मरते ही उसके परिवार को निकाल दिया होगा। इसीलिए आपको परिवार की तलाश में काफी घूमना पड़ेगा।''

[2]

मां-बेटी के सम्मिलित क्रंदन से ही नारद भोलाराम का मकान पहचान गए।

द्वार पर जाकर उन्होंने आवाज़ लगाई—''नारायण, नारायण!'' लड़की ने देखकर कहा—''आगे जाओ, महाराज।''

नारद ने कहा—''मुझे भिक्षा नहीं चाहिए। मुझे भोलाराम के बारे में पूछताछ करनी है। अपनी मां को जरा बाहर भेजो बेटी।''

भोलाराम की पत्नी बाहर आई। नारद ने कहा—''माता, भोलाराम को क्या बीमारी थी?''

''क्या बताऊं! गरीबी की बीमारी थी। पांच साल हो गए पेंशन पर बैठे, पर पेंशन अभी तक नहीं मिली। हर दस-पंद्रह दिन में एक दरख्वास्त देते थे, पर वहां से या तो जवाब ही नहीं आता था और आता, तो यही कि तुम्हारे पेंशन के मामले पर विचार हो रहा है। इन पांच सालों में मेरे सब गहने बेचकर हम लोग खा गए। फिर बर्तन बिके। अब कुछ नहीं बचा था। फाके होने लगे थे। चिन्ता में घुलते-घुलते और मरते-मरते उन्होंने दम तोड़ दिया।''

नारद ने कहा—''क्या करोगी मां?… उनकी इतनी उम्र थी।''

''ऐसा तो मत कहो, महाराज। उम्र तो बहुत थी। पचास-साठ रुपया महीना पेंशन मिलती तो कहीं कुछ और काम करके गुजारा हो जाता। पर क्या करें? पांच साल नौकरी से बैठे हो गए और अभी तक एक कौड़ी नहीं मिली।''

दुख की कथा सुनने की फुर्सत नारद को थी नहीं। वह अपने मुद्दे पर आए—''मां, यह तो बताओ यहां किसी से क्या उसका विशेष प्रेम था, जिसमें उसका जी लगा हो?''

पत्नी बोली—''लगाव तो महाराज, बाल-बच्चों से ही होता है।''

''नहीं, परिवार से बाहर भी हो सकता है, जैसे, कोई स्त्री…?''

स्त्री ने गुर्राकर नारद की ओर देखा। बोली—''बको मत, महाराज! साधु हो, कोई लुच्चे-लफंगे नहीं हो, जिन्दगी-भर उन्होंने किसी दूसरी स्त्री को आंख उठाकर भी नहीं देखा।''

नारद हंसकर बोले—"हां, तुम्हारा सोचना ठीक ही है। यही प्रेम अच्छी गृहस्थी का आधार है। अच्छा, माता मैं चला।"

व्यंग्य समझने की असमर्थता ने नारद को सती के क्रोध की ज्वाला से बचा लिया।

स्त्री ने कहा—"महाराज, आप तो साधु हैं, सिद्ध पुरुष हैं, कुछ ऐसा नहीं कर सकते कि उनकी रुकी हुई पेंशन मिल जाए? इन बच्चों का पेट कुछ दिन के लिए भर जाएगा।"

नारद को दया आ गई थी। वह कहने लगे—"साधुओं की बात कौन मानता है? मेरा यहां कोई महत्त्व नहीं। फिर भी मैं सरकारी दफ़्तर जाऊंगा और कोशिश करूंगा।"

वहां से चलकर नारद सरकारी दफ़्तर में पहुंचे। वहां पहले बाबू ने उन्हें ध्यानपूर्वक देखा और बोला—"भोलाराम ने दरख्वास्तें तो भेजी थीं, पर उन पर वजन नहीं रखा था, इसीलिए कहीं उड़ गई होंगी।"

नारद ने कहा—"भई, ये बहुत-से पेपरवेट तो रखे हैं। इन्हें क्यों नहीं रख दिया?"

बाबू हंसा—"आप साधु हैं, आपको दुनियादारी समझ में नहीं आती। दरख्वास्तें पेपरवेट से नहीं दबतीं। ···? खैर आप उस कमरे में बैठे बाबू से मिलिए।"

नारद उस बाबू के पास गए। उसने तीसरे के पास भेजा, तीसरे ने चौथे के पास, चौथे ने पांचवें के पास। जब नारद पच्चीस-तीस बाबुओं और अफसरों के पास घूम आए तब एक चपरासी ने कहा—"महाराज, आप क्यों इस झंझट में पड़ गए? आप अगर साल-भर भी यहां चक्कर लगाते रहे, तो भी काम नहीं होगा। आप तो सीधे बड़े साहब से मिलिए। उन्हें खुश कर लिया, तो अभी काम हो जाएगा।"

नारद बड़े साहब के कमरे में पहुंचे। बाहर चपरासी ऊंघ रहा था, इसीलिए उन्हें किसी ने छेड़ा नहीं। उन्हें एकदम बिना विज़िटिंग कार्ड के आया देख, साहब बड़े नाराज हुए। बोले—"इसे कोई मन्दिर-वन्दिर समझ लिया क्या? धड़धड़ाते हुए चले आए। चिट क्यों नहीं भेजी?"

नारद ने कहा—"कैसे भेजता? चपरासी तो सो रहा है।"

"क्या काम है?"—साहब ने रौब से पूछा।

नारद ने भोलाराम का पेंशन केस बताया।

साहब बोले—"आप हैं बैरागी, दफ्तरों के रीति-रिवाज नहीं जानते। असल में भोलाराम ने गलती की। भई यह भी एक मन्दिर है। यहां भी दान-पुण्य करना पड़ता है, भेंट चढ़ानी पड़ती है। आप भोलाराम के आत्मीय मालूम होते हैं। भोलाराम की दरख्वास्तें उड़ रही हैं। उन पर वज़न रखिए।"

नारद ने सोचा फिर यहां वज़न की समस्या खड़ी हो गई। साहब बोले—"भई सरकारी पैसे का मामला है। पेंशन का केस बीसों दफ्तरों में जाता है। देर लग ही जाती है। हजारों बार एक बात हजार जगह लिखनी पड़ती है, तब पक्की होती है। जितनी पेंशन मिलती है उतनी कीमत की स्टेशनरी लग जाती है। हां, जल्दी भी हो सकती है, मगर...?" साहब रुके।

नारद ने कहा—"मगर क्या?"

साहब ने कुटिल मुस्कान के साथ कहा—"मगर वज़न चाहिए। आप समझे नहीं, जैसे आपकी यह सुन्दर वीणा है, उसका भी वज़न भोलाराम की दरख्वास्त पर रखा जा सकता है। मेरी लड़की गाना-बजाना सीखती है, यह मैं उसे दे दूगां। साधुओं की वीणा तो बड़ी पवित्र होती है। लड़की जल्दी संगीत सीख गई, तो उसकी शादी हो जाएगी।"

नारद अपनी वीणा छिनते देखकर ज़रा घबड़ाए। पर फिर संभलकर उन्होंने वीणा टेबिल पर रखकर कहा—"यह लीजिए। अब ज़रा जल्दी उसकी पेंशन का आर्डर निकाल दीजिए।"

साहब ने प्रसन्नता से उन्हें कुर्सी दी। वीणा को एक कोने में रखा और घण्टी बजाई। चपरासी हाजिर हुआ।

साहब ने हुक्म दिया—"बड़े बाबू से भोलाराम के केस की फाइल लाओ।"

चपरासी दो फाइलें लेकर आया। बोला—"साहब किस केस की...?"

नारद ने समझा कि चपरासी कुछ ऊंचा सुनता है। इसलिए जोर से बोले—"भोलाराम।"

सहसा एक फाइल में से आवाज़ आई—"कौन पुकार रहा है मुझे? पोस्टमैन है क्या? पेंशन का आर्डर आ गया?"

साहब डरकर कुर्सी पर लुढ़क गए। नारद भी चौंके पर दूसरे ही क्षण बात समझ गए। बोले—"भोलाराम! तुम क्या भोलाराम के जीव हो?"

"हां"—आवाज आई।

नारद ने कहा—"मैं नारद हूं। मैं तुम्हें लेने आया हूं। चलो, स्वर्ग में तुम्हारा इन्तजार हो रहा है।"

आवाज़ आई—"मुझे नहीं जाना। मैं तो पेंशन की दरख्वास्तों में अटका हूं। यहीं मेरा मन लगा है। मैं अपनी दरख्वास्तें छोड़कर नहीं जा सकता...?"

प्रश्न अभ्यास

(1) चित्रगुप्त परेशान क्यों थे? वे बार-बार रजिस्टर में क्या ढूंढ़ रहे थे?

(2) यमदूत का चेहरा और भी विकृत क्यों हो गया था?

(3) हाथ जोड़कर यमदूत ने क्या जवाब दिया?

(4) नीचे लिखा वाक्य पढ़ो, फिर प्रश्नों के उत्तर दो ।

"महाराज, आजकल पृथ्वी पर इस प्रकार का व्यापार बहुत चला है ।"

(क) यह वाक्य किसने, किससे और कब कहा?

(ख) यह वाक्य किस संदर्भ में कहा गया है?

(ग) पृथ्वी पर किस प्रकार का व्यापार बहुत चला है?

(घ) पृथ्वी के बारे में यह बातचीत कहां हो रही है?

(5) नीचे लिखे वाक्य को पढ़कर प्रश्नों के उत्तर दो ।

"क्या नरक में निवास-स्थान की समस्या अभी हल नहीं हुई?"

(क) यह प्रश्न किसने किससे पूछा?

(ख) नरक की आवास-समस्या हल हो गई थी या नहीं? यदि हो गई थी, तो किसने किस प्रकार हल की?

(ग) बेइमान इंजीनियरों ने नरक में भी भ्रष्टाचार फैलाया या नहीं?

(6) भोलाराम के बारे में नारद जी को चित्रगुप्त ने रजिस्टर देखकर क्या बताया?

(7) नारद ने भोलाराम का मकान कैसे पहचान लिया?

(8) भोलाराम को क्या बीमारी थी?

(9) नारद की ओर स्त्री ने गुर्राकर क्यों देखा? इसके बाद उसने नारद से क्या प्रार्थना की?

(10) नीचे लिखा वाक्य पढ़कर प्रश्नों के उत्तर दो।

"आप तो सीधे बड़े साहब से मिलिए।"

(क) यह बात किसने, किससे, कब कही?

(ख) इस सलाह को मानने से नारद को क्या लाभ रहा?

(ग) बड़े साहब ने नारद की सहायता कैसे की?

(घ) क्या नारद को भी घूस देना पड़ा? उन्होंने घूस में क्या दिया?

(11) भोलाराम की दरख्वास्त पर कोई कार्रवाई क्यों नहीं हो पाती थी? अंत में क्या कार्रवाई हुई?

(12) भोलाराम का जीव अंत में कहां मिला?

(13) इस कहानी को किस प्रकार की कहानी कहेंगे?

सही उत्तर पर ✓ निशान लगाओ ।

(क) पौराणिक

(ख) सामाजिक

(ग) ऐतिहासिक

(घ) व्यंग्य प्रधान

(ङ) हास्यपूर्ण

राजेन्द्र यादव

राजेन्द्र यादव का जन्म 28 अगस्त, 1929 को आगरा में हुआ। प्रारम्भिक शिक्षा वहीं मिली और वहीं से इन्होंने एम.ए. भी किया। इसके बाद कुछ दिनों के लिए इन्होंने 'ज्ञानोदय' में सहायक सम्पादक के रूप में काम किया। कुछ महीनों के लिए इन्होंने सरकारी नौकरी भी की किंतु उसे इन्होंने त्याग दिया क्योंकि उससे इनके लेखन-कार्य में बाधा पड़ती थी। आजकल ये दिल्ली में रहते हैं। अक्षर प्रकाशन नामक संस्था के ये निदेशक हैं साथ ही ***'हंस'*** मासिक के सम्पादक भी हैं।

राजेन्द्र यादव ने लेखन का प्रारम्भ कविता से किया किंतु इन्हें विशेष ख्याति कथा-लेखन के क्षेत्र में मिली। ये ***'नई कहानी'*** के आधार स्तंभ माने जाते हैं। अब तक इनकी लगभग तीस पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। इनके कविता संग्रह का नाम है— ***'आवाज़ तेरी है'***। इनके प्रमुख उपन्यास इस प्रकार हैं— ***'प्रेत बोलते हैं', 'सारा आकाश', उखड़े हुए लोग', 'शह और मात', 'मंत्र बिद्धद, 'अनदेखे अनजान पुल',*** और ***'कुलटा'***। इनके उल्लेखनीय कहानी-संग्रह हैं— ***'खेल खिलौने', 'देवताओं की मूर्तियां', 'जहां लक्ष्मी कैद है', 'प्रतीक्षा', 'टूटना', 'अपने पार', 'अभिमन्यु की आत्महत्या',*** और ***'ढोल'***। इन्होंने एक अनोखी पुस्तक लिखी है ***'एण्टन चेखवः एक इंटर्व्यू'***। ***'प्रेमचंद की विरासत'*** तथा ***'कहानीः स्वरूप और संवेदना'*** इनकी आलोचना की पुस्तकें हैं। अपनी पत्नी मन्नू भंडारी के साथ मिलकर भी इन्होंने एक उपन्यास लिखा है ***'एक इंच मुस्कान'***। ***'सारा आकाश*** पर सफल फिल्म भी बन चुकी है जिसे नया सिनेमा की पहली फिल्म कहा जाता है।

राजेन्द्र यादव को हिन्दी के मूर्धन्य कहानी लेखकों में गिना जाता है। इन्होंने हिन्दी कहानी को एक नया मोड़ दिया है।

'गुलाम' कहानी एक प्रतीक कथा है जिसमें व्यंग्य उभर कर आया है। इसमें पशुओं के माध्यम से लेखक ने मानवीय कमजोरियों को प्रस्तुत किया है। रंगा सियार राजा होने पर भी गुलामी का अभ्यस्त है। गुलामी समाप्त हो जाने पर वह बहुत अधिक अस्वस्थ एवं मरणासन्न हो जाता है। पुनः गुलामी की परिस्थिति पाकर वह पूर्ण स्वस्थ हो जाता है। अब वह राजकाज भी संभाल लेता है। इस तरह कमज़ोर और हीनभावना से ग्रस्त शासकों और सुविधाभोगी आलसी अधिकारियों पर इस कहानी में जबर्दस्त व्यंग्य किया गया है। समकालीन राजनीतिक-सामाजिक परिवेश इस कहानी में बहुत उभरकर मूर्त हो उठा है। यह कहानी कथा लेखन के क्षेत्र में अपने आप में एक सफल प्रयोग है जो पाठकों का मन मोह लेती है और कहानी की सामर्थ्य को प्रगट करती है।

गुलाम

रंगे सियार को राज्य तो मिल गया, लेकिन समस्या यह आई कि अब शासन कैसे चलाया जाए। जंगल में शेर-चीते, भालू-भेड़िए सभी थे और सब पर अपना हुक्म चलाना आसान नहीं था। उनमें से कौन कब अचानक बिगड़ खड़ा हो और अपनी ही जान के लाले पड़ जाएं। राजा बनने के बाद भी तरह-तरह के भय और संदेह उसे सारे समय चील-कौओं की तरह खाते-नोचते रहते थे। कहीं किसी को असली बात का पता चल गया तो बोटी-बोटी अलग हो जाएगी—इसलिए नींद आना तो उसे वैसे ही बंद हो गया था।

लोमड़ी पूंछ फुलाए उसके आस-पास ही घूमती थी और इन दिनों वही उसकी सबसे भरोसे की और अच्छी सलाहकार थी। उसने राजा की चिंता समझकर एक दिन बड़े प्यार से कारण पूछा। राजा बोला, ''लोमड़ी रानी, इतना बड़ा राज्य है, समझ में नहीं आता इसे कैसे चलाऊंगा? अंदरूनी इंतजाम देखता हूं तो बाहरी हमलों का डर रहता है और बाहर ज्यादा ध्यान दूं तो यहां गड़बड़ी होती है। इसी चिंता में मैं हूं कि सारी चीजें कैसे ठीक रखी जाएं।''

लोमड़ी ने अक्लमंदी से गंभीर मुंह बनाकर कहा, ''आप एक-एक हिस्सा एक-एक को सौंप दीजिए और समझा दीजिए कि वे अपनी सारी जिम्मेवारी को देखेंगे। आप उन्हें मंत्री बना लीजिए, इज्जत दीजिए और समझा दीजिए कि वे सारी हालत रोज आपको बताते रहें। मेरा सुझाव यह है कि शेर बाहरी विभाग का अधिकारी हो और भेड़िया घरेलू विभाग का।''

राजा को अपनी लोमड़ी रानी की अक्ल पर बहुत भरोसा था। उसे यह सलाह पसंद आई। यही सबसे सीधा तरीका भी था। लेकिन तब शेर और भेड़िया दोनों आस-पास बने रहेंगे, उनसे घंटों बैठकर सलाह और विचार करने पड़ेंगे। पता नहीं कब कहां असलियत खुल जाए और लेने के देने पड़ जाएं। राजा तो यह चाहता था कि राज्य अच्छे ढंग से चले, लेकिन इस तरह के खूंखार जानवरों से कम से कम मिलना-जुलना हो। उसने हिचकिचाकर कहा, ''तुम्हारी सलाह तो एकदम ठीक है, लेकिन?..''

हिचक देखकर लोमड़ी राजा के मन की बात समझ गई। बोली, ''नए

और जवान लोगों में जोश और गुस्सा तो बहुत होता है, समझ और अनुभव नहीं होता। राजकाज जोश से नहीं अनुभव और समझदारी से चलता है। इसलिए भेड़िया और शेर ऐसे चुने जाएं जो बूढ़े और अनुभवी हों तथा इनकी अपने-अपने समाज में इज्जत हो?...।"

हां, बूढ़े होंगे तो डर कम रहेगा। डरपोक और कमजोर का दिमाग बहुत चलता है। राजा के दिमाग में अचानक ही आ गया कि इन बूढ़ों को इज्जत और सुरक्षा की बड़ी भूख होती है। इनमें कुछ और तो रह ही नहीं जाता, अपने को इज्जतदार बनाकर ये लोग सुरक्षित रहना चाहते हैं। दोनों को बराबर का ओहदा दिया जाए ताकि अपनी-अपनी इज्जत के लिए दोनों आपस में ही लड़ते रहें और दोनों को एक-दूसरे का डर बना रहे। अगर दोनों मिल गए तो अपने लिए खतरा बढ़ जाएगा। उसने खुद अपने आपको शाबासी दी कि उसका दिमाग सचमुच चलता है और ऐसा कुशाग्रबुद्धि प्राणी राजा होने ही लायक है। उसने समझदारी से कहा, "तुम्हारी बात ठीक है लोमड़ी रानी, हमें अनुभवी लोगों की जरूरत है। लेकिन मेरे राज्य में सब बराबर हैं। शेर को मैं चाहे जितनी इज्जत की निगाहों से देखता होऊं, लेकिन सरकारी तौर पर दोनों को बराबर का ही ओहदा दूंगा, ताकि कहने को यह न हो जाए कि मैंने किसी के साथ पक्षपात किया? ... लेकिन मैं चाहता हूं कि इनका संबंध सीधा मुझ से न होकर तुमसे रहे।" उसने सोचा, इस तरह रोज-रोज उनका सामना होने से वह बच जाएगा।

लोमड़ी धन्य हो गई। उसने प्रशंसा और प्यार से राजा को देखा और जीभ से उसकी मूंछें चाटीं। अगले दिन ही सभा बुलाई गई और लोमड़ी ने प्रभावशाली भाषण के बाद राजा की ओर से एक बहुत बूढ़े शेर और भेड़िए को बाहरी और घरेलू शासन का भार सौंप दिया। अनुभव और बड़ी उम्र की पूरी कद्र करते हुए भी राजा के लिए सब बराबर हैं। और, उनकी आज्ञा से दोनों को बराबर का दर्जा दिया जाता है, इस भाषण से प्रजा पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा। यह आशा भी प्रकट की गई कि हमारे सामने बहुत काम है और अभी हमें बहुत कुछ करना है। आपसी सहयोग और सद्भावना से ही हम बड़े और आगे बढ़े हुए राज्यों के बराबर पहुंच जायेंगे। तालियां बजीं, राष्ट्रगान गाया गया।

अब मांद के भीतर अंधेरे में सियार राजा बैठता, बाहर इधर-उधर दोनों बूढ़े—यानी शेर और भेड़िया। उन्हें हटाया नहीं जा सकता, किस समय उनकी सलाह की जरूरत पड़ जाए, या उन्हें ही राजा को कोई खबर देनी पड़े। लोमड़ी संदेश लाने ले जाने के लिए बराबर बाहर-भीतर का चक्कर काटती। लेकिन राजा को हमेशा यही डर था कि पता नहीं कब भेद खुल जाए। उधर जो वह चाहता था वह भी नहीं हो रहा था, दोनों बेहद सुस्त

और मरे-से पड़े रहते, मक्खियां भनभनाया करतीं। जब तक इन दोनों के बीच खटपट नहीं कराई जाएगी, न तो इनकी यह सुस्ती टूटेगी और न जोश आएगा। लेकिन शुरुआत कहां से की जाए? इधर राजा को यह महसूस हुआ कि सारी बातें लोमड़ी के जरिए नहीं कहलाई जा सकतीं। मन का असली डर उसके सामने भी नहीं खुलना चाहिए। साथ ही यह भी लगा कि लोमड़ी भेड़िए के आस-पास बहुत चक्कर लगाने लगी है और दोनों सारे समय कुछ खुसर-पुसर किया करते हैं। हो न हो, लोमड़ी ने असली भेद भेड़िए को बता दिया है और दोनों उसे मारकर खुद राजा-रानी बन बैठने की साजिश कर रहे हैं। ऐसे में अपनी बिरादरी के कुछ लोग मदद कर सकते थे, लेकिन उनसे डर था कि कोई दिलजला सबसे पहले ही भंडा भी फोड़ सकता था।

आखिर बहुत दिमागी उठा-पटक के बाद उसने तय किया कि क्यों न भेड़िए को राज्य की स्थिति देखने के लिए कुछ दिनों को बाहर भेज दिया जाए। इससे लोमड़ी से भी उसका मिलना-जुलना कम हो जाएगा और वह खुद भी आंखों से दूर रहेगा। उसने एक दिन लोमड़ी को बुलाकर राज्य की बुरी स्थिति का बखान किया और समझाया कि इस समय बहुत जरूरी है कि घरेलू मंत्री सारे राज्य का दौरा लगाकर असली हालत बताए। लोमड़ी राजा के पास ही रहती थी, और सारे उतार-चढ़ाव वह समझ गई कि मामला कुछ और है। उसने जाकर सारी बात भेड़िए को बताई, उसे कुछ समझाया। थोड़ी ही देर में गुर्राता हुआ भेड़िया सीधा राजा के सामने जा पहुंचा।

''धूर्त, बदमाश गीदड़, मेरे सामने चालाकी करने की कोशिश की तो एक पल में ठिकाने लगा दूंगा। मैं तेरी असलियत जानता हूं। तुझे शर्म नहीं आती कि बूढ़ों को आराम से बैठने देने के बजाय इधर-उधर दौड़ाता है! डर और डाह से तेरा दिमाग खराब हो गया है।'' भेड़िए ने झपटने के लिए तैयार होकर राजा को सुनाया। लोमड़ी खिसक गई थी।

भय और घबराहट से राजा को पसीना छूटने लगा। उसकी घिग्घी बंध गई और मुंह से बोल निकलना मुश्किल हो गया। हकलाकर कहा, ''भेड़िए बाबा, मेरी बात तो सुनिए, मेरी असलियत आपके सामने खुल ही गई है, अब मारिए या जिलाइए। सब कुछ आपके हाथ में है, मैं तो आपकी दया पर ही हूं। सब कुछ होते हुए भी आप ही मेरे पास पड़ते हैं। शेर और हाथी तो हमारी बिरादरी के भी नहीं हैं। आप इस गद्दी पर बैठिए, मैं आपकी सेवा करूंगा।'' कहकर वह भेड़िए के चरणों में गिर पड़ा।

भेड़िया अनुभवी था। उसने सोचा, कुछ भी हो, जंगल के सारे जानवर तो इसे राजा मानते हैं, वे इसे भगवान की तरफ से भेजा हुआ समझते हैं। मेरे राजा बनने से नया बखेड़ा खड़ा हो जाएगा। उसने ठंडे होकर कहा,

"गद्दी लेकर क्या करना है। गद्दी पर तू ही बैठ, लेकिन यह समझ ले कि हम इज्जतदार जानवर हैं और इज्जत से ही रहेंगे। तू अपनी हैसियत से रह और बूढ़ों को इधर-उधर दौड़ाकर परेशान मत कर?...।"

राजा खुशामद से उसके पैर चाटता और पूंछ सहलाता रहा। तभी कहीं से लोमड़ी भी आ गयी और तीनों ने सलाह की कि राज्य की सरहद की देखभाल के लिए शेर को दौरे पर भेज दिया जाए।

लोमड़ी और भेड़िए ने लगातार बाहरी हमलों और खतरों की बातें कह-कहकर, राजा की आज्ञा का हवाला देकर शेर को दौरे पर भेज दिया। शेर बड़े बेमन से चला तो गया, लेकिन भीतर ही भीतर भुनभुनाया। सारे दिन लोमड़ी और भेड़िए को 'महल' में आते-जाते देखकर उसे किसी गहरी साजिश की गंध भी आ रही थी। बुढ़ापे में आराम की जगह यह भागदौड़ उसे बिल्कुल भी पसंद नहीं आई।

इधर एक तरह भेड़िया ही राज करने लगा था। वह राजा की आज्ञा के नाम पर चाहे जिसे मरवा देता, चाहे जिसे इधर से बदलकर उधर फेंक देता। सारे खास-खास ओहदों पर वह अपने और लोमड़ी के भाई-भतीजों को ले आया। उसके नाम से जंगल के सारे जानवर कांपते थे और वह जब महल में आता तो शान से गद्दी पर बैठता। राजा अपने दोनों पंजों से उसकी पूंछ दबाता और जीभ से उसका शरीर चाटता रहता। उसके सामने ही लोमड़ी और भेड़िया इश्क लड़ाते रहते, आपस में किल्लोलें करते और वह मन-ही-मन कुढ़ता हुआ इनकी सेवा करता। उसकी इज्जत और जान भेड़िए के हाथ में थी। कभी-कभी उसका मन होता कि बाहर जाकर अपनी सारी प्रजा को बता दे—भाइयो, मैं राजा-वाजा कुछ नहीं, एक छोटा और डरपोक गीदड़ हूं और मेरा नाम ले-लेकर जो कुछ किया जाता है उसमें न मेरा हाथ है, न मेरी जानकारी। लेकिन जानता था कि ऐसा वह नहीं कर सकता। इतने दिनों धोखा दिया है, इस आधार पर सारे जानवर उसे मार डालेंगे। और अगर वे न भी मारें तो यह भेड़िया तो छोड़ेगा नहीं। लोमड़ी भी उससे जा मिली है। वह भी कहीं मुझे नीचा समझती है। बस एक ही उम्मीद थी कि शेर लौट आए तो किसी तरह उस तक अपनी बात पहुंचाई जाए। तब तक तो पूंछ से भेड़िए का चंवर डुलाते हुए सब कुछ बर्दाश्त करना ही होगा।

शेर खुद ही गुस्से में दहाड़ता हुआ लौटा था। कहीं भी कुछ नहीं था जो उसे बेकार ही इन लोगों ने दौड़ा दिया था। वह सीधा महल में घुसा चला गया। भेड़िया नहीं चाहता था कि शेर और राजा मिलें, लेकिन शेर का मिज़ाज देखकर भीतर जाने और भेद लेने की हिम्मत न पड़ी। उधर राजा भी अचानक शेर को सामने देखकर सकपका गया, उसकी बोली बंद हो गई। वह सीधा उसके चरणों में लेट गया, "महाराज, आपको परेशान

करने में मेरी कोई गलती नहीं है। मुझे तो इन लोगों ने किसी लायक नहीं रखा और मेरी कोई पूछ नहीं है। जो मन होता है, करते हैं, मैं तो एक तरह से यहां कैद हूं। आप खुद सोचिए, मेरी हिम्मत आपको परेशान करने की हो ही कैसे सकती है? मैं क्या जानता नहीं हूं कि आप ही जंगल के असली राजा हैं, आपके खून में शासन करना है। मैं तो सच्चे दिल से चाहता हूं कि आप जैसे अनुभवी और रोबीले हाथों में सारा राजकाज रहे और मुझे छुट्टी मिले। आपके साथ जो ज्यादती हुई है, उसका मुझे सचमुच बहुत अफसोस है।''

यह सब सुनकर शेर दया से पिघल गया। उसकी समझ में सारा खेल आ गया। वह एकदम बाहर निकला और सीधा भेड़िए पर टूट पड़ा। जब तक कोई कुछ समझे, उसने भेड़िए के टुकड़े-टुकड़े कर डाले। फिर उसी तरह लौटकर राजा को बताया कि उस बदमाश का सफाया कर दिया है। तुम राजा हो, राजा ही बने रहो। मैं इज्जत के साथ कहीं आराम करना चाहता हूं। मुझे छुट्टी मिलनी चाहिए। राजा ने सोचा कि अगर ऐसा दयालु और शक्तिशाली शेर अपने पास बना रहे तो किसी का डर नहीं रहेगा। उसने फिर उसके पांव चाटे, पूंछ दबाई, शरीर चाटा, ''महाराज, आप इस उम्र में कहां जंगल-जंगल मारे फिरेंगे? आप यहीं रहिए, आप को सारी सुख-सुविधाएं देने का जिम्मा मेरा है। हम लोग आप की सेवा करेंगे।'' खैर, किसी तरह शेर मान गया। उधर लोमड़ी भी पलट गई थी और राजा के पास आकर इस तरह शेर से रुकने का आग्रह करने लगी थी, जैसे कभी भेड़िए से उसका परिचय ही न रहा हो।

अब शेर मजे से अच्छे से अच्छा खाना खाता। जब तक मन होता, रहता और बहुत थक जाता तो बाहर घूम आता। जब तक वह महल में रहता, लोमड़ी और सियार दोनों उसकी सेवा करते रहते। राजा उसकी पूंछ दबाया करता और लोमड़ी शरीर चाटती रहती। लोमड़ी को लगा कि उसका उद्धार राजा की रानी बने रहने में है। वह रानी बनकर सारा राजकाज देखती, राजा के नाम पर तरह-तरह की आज्ञाएं जारी करती। इस तरह राजा का यश दिन दूना और रात चौगुना बढ़ता चला गया। उसके योग्य शासन की चारों तरफ धाक जम गई। राजा बिना शेर की सलाह के कुछ न करता। शेर भी बड़ा सुखी था।

शेर बूढ़ा तो था ही। एक दिन यों ही बाहर चहल-कदमी करने गया तो लौटा नहीं। या तो कहीं मर गया या किसी और ने उसे मार दिया। जैसे ही महल में खबर पहुंची तो चारों तरफ मातम छा गया। पूरे जंगल में सरकारी शोक मनाया गया, झंडे झुका दिये गए। दफ्तरों की छुट्टियां हो गईं और चारों तरफ शोक-संगीत गूंजने लगा। राजा को सचमुच ही दुःख हुआ था। एक तो उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि सारा राज्य कैसे

चलेगा, वह किससे सलाह लेगा। भेड़िया अपनी तेज बुद्धि के कारण और शेर अपने अभ्यास के कारण जिन मसलों को चुटकी में हल कर देते थे उनमें स्यार राजा के हाथ-पांव फूल जाते थे, दिमाग ही काम नहीं करता था। दूसरे, सारे दिन उसके हाथ-पांव दर्द करते रहते, जीभ ऐंठती रहती। पूंछ दबाने और शरीर चाटने की ऐसी आदत पड़ गई थी कि समझ में नहीं आता था कि अपने पंजों और जीभ का क्या करे। वह सुस्त और उदास रहने लगा।

एक दिन सारे जंगल में तहलका मच गया कि राजा बीमार हो गया है और उसकी तबियत दिन-ब-दिन बिगड़ती चली जा रही है। राजा की हालत सचमुच बहुत ही खराब हो गई थी और सारे सरकारी अफसर, मातहत इधर से उधर दौड़-धूप कर रहे थे कि अब क्या होगा। ईश्वर का भेजा हुआ राजा अगर बीमार हो गया है तो जरूर कोई भारी मुसीबत राज्य पर आने वाली है। लोमड़ी बेचारी रात-दिन सेवा कर रही थी। राजा सूखकर कांटा हो गया था और कोशिश करने पर भी उसकी आवाज नहीं निकलती थी, बस आंखें फाड़े इस छूटते वैभव और राजसी ठाठ-बाट को देखा करता था। सब को लग गया कि अब राजा कुछ ही दिनों का मेहमान है। लोमड़ी सबसे कहती कि राजा को अपने दोनों प्रिय मंत्रियों के जाने का ऐसा सदमा बैठा है कि अब शायद ही उठ सके। वह जोर-जोर से रोने लगती, अब पता नहीं कौन राजा हो? उसे अपने सुख-आराम छिन जाने की चिंता हो रही थी। उधर यह भी समाचार उसे मिल रहे थे कि राजा बनने के लिए बड़ी-बड़ी उठापटक जंगल के जानवरों में चल रही है। किसी का कहना था कि फौजें विद्रोह कर देंगी और कोई सेनापति ही राजा बन बैठेगा, किसी का अंदाजा था कि भेड़िए के लाए हुए भाई-भतीजों में से कोई राजा बनेगा। उधर राज्य-भर के हकीम-वैद्य रात-दिन एक करके राजा की जान वापस लाने में लगे हुए थे।

तभी किसी ने खबर दी कि बहुत दूर जंगल के किसी कोने की मांद में कोई बहुत ही बूढ़ा सियार-वैद्य रहता है और आस-पास उसकी बड़ी शोहरत है। वह किसी से कुछ लेता-देता भी नहीं है। फौरन राजा के चर दौड़े गए और उस वैद्य को ले आए। बड़ी गंभीरता से नाक पर चश्मा खिसकाकर वैद्य ने राजा की हालत देखी। वह देखते ही राजा की असलियत समझ गया। लोमड़ी को एक तरफ ले जाकर उसने कुछ समझाया। लोमड़ी की समझ में कुछ भी नहीं आया, लेकिन उसने फौरन ही सेवक दौड़ाए कि जैसे भी और जहां से भी हो, कोई मरा हुआ शेर या भेड़िया लाया जाए। लोगों ने समझा कि शायद उसके किसी हिस्से की दवा बनाकर राजा को खिलाई जाएगी। सारा राज-काज ठप्प हो गया था और लोग जल्दी-से-जल्दी राजा की समस्या को हल कर डालना चाहते थे।

बड़ी मुश्किल से किसी झाड़ी में फंसकर भूख-प्यास से मरा हुआ एक सूखा-सा बाघ मिला। शेर या भेड़िया मिला ही नहीं उस समय खैर, बाघ की ठठरी अंदर भेज दी गई और जनता भीड़ लगाकर महल के बाहर नए सूचना-पत्र की राह देखने लगी। वैद्य ने सबको महल से बाहर निकाल दिया। सिर्फ लोमड़ी ही वहां रही। आज्ञा दे दी गई कि कोई भीतर न आने पाए। अब वैद्य ने राजा को उठाकर बाघ के पैरों पर डाला और उसके पंजे अपने हाथ में पकड़कर बाघ की पूंछ सहलाने लगा। और कुदरत का कमाल देखिए, जैसे-जैसे उसके पंजों से बाघ की पूंछ सहलाई जाती रही, बीमार और बेहोश राजा में उसी-उसी तरह शक्ति का संचार होता रहा। सारे शरीर में चेतना आई, आंखें खोलीं और राजा खुद ही जीभ से बाघ के पांव और शरीर चाटने लगा।

सारे जंगल में खुशी की लहर दौड़ गई कि वैद्य के इलाज से राजा की हालत सुधर गई है। प्रार्थनाएं और मंगल-गान होने लगे, वैद्य की जय-जयकार होने लगी। और कुछ ही दिनों में राजा स्वस्थ हो गया। वह और लोमड़ी मिलकर निहायत ही योग्यता और कुशलता से राज करने लगे। वैद्य के सिवा इस रहस्य की किसी को भी जानकारी नहीं हो पाई कि यह चमत्कार कैसे हुआ। आज भी राजा जब बाघ की पूंछ पर हाथ फेरता है या उसके पांव चाटता है तो जादू की तरह उसके भीतर आत्म-विश्वास की लहरें आने लगती हैं। जटिल से जटिल समस्या के हल उसके दिमाग के सामने खुद ही खुलने लगते हैं। इस तरह वह दिन-रात अपनी साधना में लगा, योग्यतापूर्वक राज-काज चला रहा है।

प्रश्न अभ्यास

(1) राज्य मिल जाने के बाद रंगे सियार के सामने कौन-सी समस्या आई? लोमड़ी ने इसका क्या हल बताया?

(2) नीचे लिखा वाक्य पढ़कर प्रश्नों के उत्तर दो।

''हिचक देखकर लोमड़ी राजा के मन की बात समझ गई।''

(क) इस वाक्य में किस राजा का जिक्र है? उसे किस बात की हिचक हो रही थी?

(ख) राजा के मन में कौन-सी बात थी?

(ग) लोमड़ी ने क्या सलाह दी? वह राजा की कौन थी?

(घ) लोमड़ी की सलाह पर राजा क्या सोचने लगा?

(3) लोमड़ी ने अपने भाषण में क्या कहा? भाषण का प्रजा पर क्या असर पड़ा?

(4) नीचे लिखे वाक्य को पढ़कर प्रश्नों के उत्तर दो।

''थोड़ी ही देर में गुर्राता हुआ भेड़िया सीधा राजा के सामने जा पहुंचा।''

(क) भेड़िया किस कारण गुर्रा रहा था?

(ख) उसने राजा को क्या खरी-खोटी सुनाई?

(ग) उसके जवाब में राजा ने हकलाकर क्या कहा?

(घ) अंत में राजा ने क्या किया जिससे भेड़िये ने उसे क्षमा कर दिया?

(5) भेड़िये को सियार ने अपने रास्ते से कैसे साफ़ किया?

(6) शेर को सियार ने किस प्रकार खुश किया?

(7) सियार सुस्त और उदास क्यों रहने लगा?

(8) सारे जंगल में तहलका क्यों मच गया?

(9) रंगे सियार की बीमारी का क्या कारण था?

सही उत्तर पर √ निशान लगाओ।

(क) असलियत खुल जाने का डर।

(ख) राज-काज की फ़िक्र।

(ग) भेड़िए और शेर जैसे मंत्रियों के मरने का सदमा।

(घ) गुलाम बने रहने की वृत्ति का तृप्त न होना।

(10) सियार की बीमारी का इलाज किसने ढूंढ़ निकाला? उसने क्या इलाज बताया?

(11) इस कहानी में समाज के किस-किस वर्ग पर और उनकी किन-किन कमजोरियों पर व्यंग्य किया गया है?

(12) लेखक ने यह कहानी किस उद्देश्य से लिखी है?
सही उत्तर पर √ लगाओ।

(क) राजा और प्रजा के सम्बन्धों पर रोशनी डालने के लिए।

(ख) पशुओं की सामान्य वृत्तियों एवं मनोभावनाओं का चित्रण करने के लिए।

(ग) मानव स्वभाव का चित्रण करने के लिए।

(घ) समाज के कुछ विशिष्ट लोगों पर व्यंग्य करने के लिए।

(13) रंगे सियार की उन विवशताओं का वर्णन करो जिनके कारण सब कुछ समझते हुए भी वह लोमड़ी पर निर्भर रहा।

प्रभाकर द्विवेदी

प्रभाकर द्विवेदी का जन्म रियासत धार (मध्य प्रदेश) में 3 नवंबर, 1933 को हुआ। बचपन मध्य प्रदेश और राजस्थान में बीता। शिक्षा लखनऊ में पाई। प्रारंभ में भारतीय ज्ञानपीठ एवं काशी नागरी प्रचारिणी सभा में कार्य किया जहां हिन्दी विश्वकोष में सहायक सम्पादक रहे। इसके बाद कुछ समय के लिए राउरकेला स्टील प्लांट में नौकरी की। सन् 1963 से एन.सी.ई.आर.टी. (राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्) से जुड़े हुए हैं, जहां ये आजकल प्रधान सम्पादक हैं।

प्रभाकर द्विवेदी 1950 से ही निरंतर लिख रहे हैं। अब तक इनके तीन कहानी-संग्रह प्रकाशित हुए हैं— ***'इकाइयों के बीच'***, ***'कागा चुनि चुनि खाइयो'*** और ***'सात दर्पणों की निर्मला'***। इनके प्रमुख उपन्यास हैं— ***'किसको नमन करूं'***, ***'फिर बहुत दिन बाद'***, ***'वही आदिम आंच'*** और ***'शीतला बहू का प्रणय प्रसंग'***। इनको भ्रमण-वृत्तांत लिखने में विशेष ख्याति मिली है। इनकी यात्रा-विवरण की पुस्तकें है— ***'पार उतरि कहँ जइहौ'*** और ***'धूप में सोई नदी'***। इनके अतिरिक्त विविध विषयों में इनकी अनेक पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। इन्हें उत्तर प्रदेश के हिन्दी संस्थान ने अपने पुरस्कार से 1980 में सम्मानित किया है।

प्रभाकर द्विवेदी की कहानी ***'सोर्सराम जी की महिमा'*** हास्य व्यंग्य की रचना है। इसमें ऐसे व्यक्तियों का मज़ाक उड़ाया गया है जो हर समय, हर जगह जान-पहचान बढ़ाने के चक्कर में रहते हैं ताकि अपना काम कराया जा सके। लेखक ने सोर्स बिठाने वाले ऐसे चरित्र का नाम ही 'सोर्सराम' रख दिया है। सोर्सराम का मानना है कि बिना सोर्स के आजकल कोई काम नहीं हो सकता, चाहे नींबू खरीदने जैसा छोटा काम हो या किसी दफ्तर में कोई बड़ा काम करवाना हो। कहानी की घटनाएं स्वयं ही सोर्सराम के सिद्धांत को काट कर रख देती हैं। कहानी की भाषा हल्की-फुल्की, बोलचाल की सरल हिन्दी है जिसे हास्य व्यंग्य प्रधान शैली में लिखा गया है।

सोर्सराम जी की महिमा

अगर मैं आपसे पूछ बैठूं कि आप गायत्रीराम जी को जानते हैं, तो आप भौंचक्के रह जाएंगे। बात ठीक भी है, क्योंकि अब गायत्रीराम जी को गायत्रीराम के नाम से शायद ही कोई जानता हो। अब तो वे सोर्सराम के नाम से विख्यात हैं।

इस शहर में सोर्सराम को ढूंढ़ निकालना कोई मुश्किल काम नहीं है। शहर के किसी भी कोने में अगर आपको कोई महाशय धोती कुर्ता पहने, पान की पीक से होंठ लाल किए, आंखों में पतली किनारी का सुरमा लगाए, दोस्ती बढ़ाने के चक्कर में लगे मिल जाएं, तो समझिए कि वे ही हैं हमारे चरितनायक सोर्सराम जी।

सोर्सराम जी को हर किसी की मदद करने की बीमारी है। आप चाहें, या न चाहें, वे आपकी मदद को दौड़े रहेंगे। आपका कोई भी काम हो, सुनते ही वे तुरंत कहेंगे, ''भाई, आजकल तो बिना सोर्स के कोई काम होता नहीं। अगर आप लोगों को जानते हैं, तो काम फट से होता है। नहीं तो चक्कर काटते रहिए, काम अटका ही रहेगा।''

और सोर्सराम जी तो ठहरे यदा नाम तथा गुण वाले मददगार हरदिल अजीज़। आपके काम के लिए वे तुरंत सोर्स भिड़ाने लग जाएंगे। मिनटों में वे अपने सैकड़ों हितैषियों के नाम गिना जाएंगे। फिर भला आपका काम करवाने के लिए वे आपको लिए-लिए अपने सोर्स के पास न पहुंचें, यह नहीं हो सकता।

सोर्सों का अक्षय भंडार घटने न पाए, इसके लिए वे रात-दिन प्रयत्नशील रहते हैं। राह चलतों से दोस्ती बढ़ाना उनकी हॉबी है। दोस्ती करने के लिए सबसे पहले वे आपकी मदद को दौड़े आएंगे, इससे आप उनसे प्रभावित हो जाएंगे और फिर उनके असंख्य मित्रों की लिस्ट में आपका नाम भी अंकित हो जाएगा।

मान लीजिए आप सब्ज़ी की दुकान पर खड़े हैं। और मन ही मन हिसाब लगा रहे हैं कि टिंडा ले जाऊं या तोरी। तभी सोर्सराम जी आपकी मुखमुद्रा से आपके मन की बात भांप जाएंगे। फिर भला उन जैसा परदुख-कातर व्यक्ति चुप क्यों रहने लगा? तुरंत बोलेंगे, '''टिंडा ले जाइए, साहब । इसमें इतना सोचने की क्या बात है? टिंडे की सब्ज़ी से बढ़कर आजकल कौन-सी सब्ज़ी हो सकती है? फिर आज के टिंडे तो बिलकुल मलाई हैं। क्या नरम हैं! क्या हरे हैं! लीजिए, मैं छांट देता हूं। आपको शायद अच्छे टिंडों की पहचान नहीं है।''

यह कहते-कहते वे तीन-चार टिंडे उठाकर आपको पकड़ा देंगे। आप

अभी पसोपेश में ही हैं कि पता नहीं टिंडों का स्वागत घर में कैसा होगा, तब तक वे और टिंडे छांटने लग जाएंगे। फिर भला आप कैसे मना करेंगे? नतीजा यह कि टिंडे आपके थैले में होंगे, और आप सोर्सराम जी की दोस्ती के थैले में। उन्होंने आपका इतना उपकार किया, बदले में क्या वे आपसे इतना भी नहीं पूछ सकते कि आप कहां रहते हैं, किस दफ्तर में काम करते हैं? आपने दफ्तर का नाम बताया नहीं कि तुरंत उनके मुंह से फुलझड़ी छूटने लग जाती है। आपके दफ्तर के बाबत उन्हें ज़्यादा पता होगा। वहां के लोगों को वे आपसे ज़्यादा जानते होंगे। दफ्तर में किस-किस की नौकरी उन्होंने लगवाई है, यह पुराण अब आपको सुनना ही पड़ेगा। दफ्तर का सारा कच्चा-चिट्ठा उनकी जबान पर होगा, और आपको चाहे-अनचाहे वे सब सुनाकर रहेंगे।

इस तरह अमुक का काम अमुक से करवाने की चर्चा कर सारे अमुक लोगों को वे अपने बस्ते में बंद कर रखेंगे और मौके-बेमौके सारे अमुकों को रेजगारी की तरह खनखनाया करेंगे, भिड़ाया करेंगे।

सोर्सबाज़ी के सिद्धांत में सोर्सराम जी का अटल विश्वास है। वे यह मान ही नहीं सकते कि कोई काम अपने आप भी हो सकता है। चाहे छोटा काम हो, चाहे बड़ा, सिफ़ारिश और पहचान ज़रूरी है। आपको एक साड़ी खरीदनी है और आप सोच रहे हैं कि शाम को बाज़ार से खरीद लूंगा। तभी सोर्सराम जी को अपने किसी सोर्स से पता लग गया कि साड़ी खरीदे बगैर आपकी खैर नहीं है, तो बस वे आपकी मदद के लिए फैंटम की तरह हाज़िर हो जाएंगे। पहले वे आपको लेकर खन्ना के पास जाएंगे। खन्ना के पास इसलिए कि खन्ना कई साड़ीवालों को जानता है। फिर खन्ना और आपको लेकर वे नानकराम साड़ी मार्ट जाएंगे।

यहां आप शायद यह सोचने लग गए हैं कि साड़ी खरीदने के लिए सोर्स की क्या ज़रूरत है! खुले आम बिकती है, बाज़ार गए और खरीद लाए। आखिर तो दाम देकर लानी है, कोई फोकट में तो उठा नहीं लानी है। लेकिन ऐसी लचर बातों के लिए सोर्सराम जी के पास अकाट्य तर्क है। वे कहते हैं कि, "जनाब, ज़माना बड़ा खराब है। किसी के दीन ईमान क़ा यकीन नहीं रह गया है। असली नकली में कोई फर्क नहीं रह गया है। एक ही जैसी साड़ी एक दुकान पर पचास रुपयों की मिलेगी, तो दूसरी दुकान पर सौ की। कौन असली है कौन नकली, किसे पता? फिर आज के दुकानदार मनमाना प्रॉफिट लगाकर माल बेचते हैं। कोई पचास फीसदी मुनाफ़ा कमाता है तो कोई डेढ़ सौ फीसदी। इसलिए जान-पहचान वाले को ले जाना निहायत ज़रूरी है। मुनासिब दाम पर सही चीज़ तो मिलेगी!"

सौ डेढ़ सौ की साड़ी खरीदने तक ही जान पहचान की ज़रूरत हो, ऐसी बात नहीं है। हमारे, आपके और सबके मित्र सोर्सराम जी दस पैसे का

नींबू भी बिना सोर्स के नहीं खरीदते। इस बारे में उनके विचार बड़े सुलझे हुए हैं। वे कहते हैं कि "यह भी कोई बात हुई कि गए और दस पैसे फेंक कर नींबू उठा लाए। यह तो साफ़-साफ़ अपना मतलब गांठना हुआ। आदमी तो वह है जो स्वार्थ के साथ-साथ परमार्थ भी भोगता चले। दस पैसे देकर एक नींबू उठा लाने का काम तो कोई बच्चा भी कर सकता है। लेकिन अगर मुझे करना है, तो अपनी स्टाइल में ही करूंगा। नींबू खरीदना तो एक निमित्त मात्र है। असल चीज़ है परिचय। जब आप किसी नींबू वाले से मुस्करा कर नींबू खरीदेंगे और साथ-साथ उसका हाल-चाल भी पूछेंगे, तो वह आपका अपना आदमी हो जाएगा। यह अपनापन जाने क्या रंग ले आए! कौन जानता है कि यह नींबू वाला कल क्या बेचने लग जाए? या यही बात कौन जानता है कि इस नींबू वाले में क्या-क्या हुनर हैं? कहीं यह बिच्छू काटे का मंतर जानता हो तो? या इसे हड्डी बिठाना मालूम हो तो? हो सकता है पीलिया उतारना जानता हो। किसे मालूम कि इसके ग्राहकों में कौन-कौन है? एक से एक बड़ी जगह वाले भी इसके यहां से नींबू खरीदते ही होंगे। बिना नींबू के रसोई का काम तो चलेगा नहीं। हर बड़ा आदमी नींबू खरीदता ही है। नींबू खरीदने के लिए कभी न कभी तो इसकी दुकान पर भी आता ही होगा। इस बहाने एक से एक बड़े आदमी से परिचय हो सकता है। अगर सीधे परिचय नहीं हो सकता, तो कम से कम नींबू वाले से तो कहलवाया ही जा सकता है। और यदि नींबू वाले से कहलवाना है, तो ज़रूरी है कि उसे पटाकर रखा जाए। और पटाने के लिए, यदि कुछ और नहीं कर सकते तो कम से कम उससे नींबू तो खरीद ही सकते हैं। इसके वास्ते अगर उस नींबू वाले से नींबू लेते समय दस बोल हंसते हुए बोल लिए, तो क्या गजब हो गया भला!"

इस तरह से सोर्सराम जी की तर्क पद्धति चलती रहती है, जो यह प्रमाणित कर देती है कि नींबू खरीदते वक्त भी बड़ी अक्ल की ज़रूरत होती है।

इस दोस्ती और सोर्सबाज़ी का सीधा गणित है। मान लीजिए, आप दूध के दफ्तर से संबंधित हैं। आपका राशन कार्ड नहीं बन पा रहा है। सोर्सराम जी तुरंत आपको राशन दफ्तर ले जाएंगे। वहां वे आपके काम के लिए उस आदमी से कहेंगे जिसका कोई सामान नागपुर भिजवाने में उन्होंने अपने सोर्स की मदद ली थी। इस सोर्स के सोर्स के सोर्स का कोई काम दूध के दफ्तर में अटका होगा, तो वे आपके पास आ जाएंगे क्योंकि आपका राशन कार्ड बनवाने में उन्होंने आपकी मदद की थी।

इस तर्क पद्धति के कई उज्ज्वल पक्ष हैं। जैसे कि एक बार मैंने उनसे पूछा कि सोर्सराम जी, आपको सोर्स की महिमा का एहसास सबसे पहले कब हुआ? वे पूरे आत्मविश्वास के साथ बोले कि जन्म से पहले ही हो चुका

था। मैंने सवालिया निगाहों से उन्हें घूरा, तो वे बोले, ''जनाब, मैं तो इस संसार में आया ही सोर्स से हूं। मेरी मां अपनी शादी के दस साल बाद तक भी जब औलाद का चेहरा न देख पाई, तो उन्हें पीरों के पास ले जाया गया। एक पहुंचे हुए पीर का सोर्स लगाकर भगवान तक पहुंच की गई। फिर क्या था, सोर्स काम कर गया और हमें दुनिया में भेजा गया।''

सोर्सराम जी की क़ार्य प्रणाली का अध्ययन भी मैंने बहुत निकट से किया है। जैसी तेज़ी से वे सोर्स तलाशते हैं उसी तेज़ी से वे अपनी समस्याएं भी ढूंढ़ लेते हैं। आखिर सोर्सों का महत्व ही क्या रह जाएगा यदि समस्याएं न होंगी? इसलिए वे राह चलते समस्याएं और उनसे ग्रस्त असामी ढूंढ़ लेते हैं।

मान लीजिए आप तेज़ी से चले जा रहे हैं। सोर्सराम जी ने आपको देखा, तो राह रोक कर पूछेंगे, ''कहिए, खैरियत तो है?''

आप उनसे बच निकलना चाहेंगे फिर भी बता ही देंगे कि रेडियो बनवाना है। उसी के लिए जा रहा हूं। बस सोर्सराम जी का काम बन गया। झट से बोलेंगे, ''रेडियो?.... बनवाना है? मुझसे क्यों नहीं कहा? वह छक्कन का लड़का है न! वह बना देगा। दुकान पर जाने की क्या ज़रूरत है?''

इसके बाद छक्कन के लड़के की तलाश होगी। इधर-उधर की बातों के बाद उसे बताया जाएगा कि यार, जरा सा चलो न! इनका रेडियो ठीक आवाज़ नहीं दे रहा है। ज़रा हाथ लगा दो, ठीक हो जाएगा।

छक्कन का लड़का आपका रेडियो सेट खोलेगा। उसमें ताक-झांक करेगा, कुछ पुर्जे खोलेगा, कुछ जोड़ेगा। तब तक इंटर्वल हो जाएगा। फोकट में रेडियो बनने के अहसान तले आप सोर्सराम जी और छक्कन के लड़के के लिए चाय-नाश्ता ले आएंगे। इंटर्वल में कई रसगुल्ले और समोसे खाकर छक्कन के लड़के फिर रेडियो में जुट जाएंगे। आधे पौन घंटे बाद भी जब आवाज़ ठीक न होगी तो छक्कन का लड़का कुछ ऐसा करिश्मा दिखाएगा कि रेडियो में जो आवाज़ पहले से ही आती रही होगी, वह भी चली जाएगी। तब वह पसीना पोंछता हुआ बताएगा कि ''अंकल, इसमें एक वाल्व डिफेक्टिव है। उसे बदलना होगा। फिर शोल्डरिंग भी करनी होगी। इसके लिए मैं औज़ार ले आऊं।''

छक्कन के सुपुत्र जाते वक्त कह जाएंगे, ''यह सेट खुला हुआ छोड़े जा रहा हूं, कोई छेड़े न, कोई बन्द भी न करे। मैं आकर ठीक करूंगा।''

इसके बाद छक्कन के लड़के का पता न चलेगा। मेज़ पर खुला रेडियो उनकी प्रतीक्षा करता रहेगा। आप मेज़ का कोई और इस्तेमाल न कर पाएंगे। कोई बच्चा उस मेज़ के आसपास न आने पाएगा। इस तरह कई दिन बीत जाएंगे। इसके बाद दो ही रास्ते रह जाते हैं। या तो सोर्सराम जी

की सेवाएं उपलब्ध कर छक्कन के लड़के का अनुसंधान कीजिए या इस खुले रेडियो को बाज़ार के मेकैनिक के पास ले जाइए।

हो सकता है कि छक्कन के चिरंजीवी हाथ आ जाएं लेकिन रेडियो की खराबी उनके हाथ आ जाए, यह जरूरी तो नहीं। इसलिए सोर्सराम जी इस बार कोई और घरेलू मिस्त्री पकड़ लाएंगे। वह भी अपने हिस्से के पकौड़े खाकर और अपने हिस्से की नई खराबी पैदाकर चम्पत हो जाएगा। फिर जो फोकटिए कारीगरों का सिलसिला चालू होगा, तो तब तक चलता रहेगा जब तक आपके सेट में कई खराबियां न हो जाएं। अन्त में आप उसे दुकान में ही ठीक कराएंगे। हो सकता है कि पहले वह पांच-दस रुपए में ही ठीक हो जाता, पर अब उसके लिए चालीस-पचास रुपए खरचने पड़ जाएंगे।

लेकिन अगर सोर्सराम जी को पता लग गया कि आपने इस ज़रा सी खराबी के लिए पचास रुपए फूंक दिए हैं, तो जनम भर के लिए उनके पास कहने को हो जाएगा कि जनाब आपने तो मेरी बात मानी ही नहीं। यह काम तो मैं अपने सोर्स से फ्री करा देता। आप ही को रुपए काट रहे थे जो दुकान-दुकान दौड़ते फिरे। और अगर दुकान वाले तक सोर्स भिड़ाकर वे आपको ले गए हैं तो कहेंगे, ''अरे साहब इस रेडियो में तो जाने कितनी खराबियां थीं। इसे तो बदलना ही पड़ता। यह तो कहिए मेरी पहचान का था, रियायत करके पचास रुपए में ही ऐसी मरम्मत कर दी कि नए के माफिक हो गया।''

एक बार मैं रेल की सीट के रिज़र्वेशन के लिए लाइन में लगा था कि सोर्सराम जी दिख गए। बोले, ''कमाल है! मेरे होते हुए तुम लाइन में लगो यह कैसे हो सकता है! चलो मैं अन्दर से टिकट दिलवा दूं।''

लाइन छोड़कर मैं चोर दरवाज़े से उनके साथ भीतर गया। वहां अपना आदमी ढूंढ़ने में दस मिनट लग गए। उस अपने आदमी के साथ हम लोग टिकट बाबू तक आए। संयोग से टिकट बाबू के साथ सोर्सराम जी का सोर्समय परिचय निकल आया। उसने हम लोगों से प्रेममय हाथ मिलाया, हाल-चाल पूछा और हम लोगों को सामने की कुर्सियों पर बिठाकर उसने एक मिनट की माफी मांगी और खिड़की के बाहर की लाइन निबटाने में लग गया।

बीच-बीच में वह सोर्सराम जी से मुस्कराकर पूछता, ''और सुनाइए, क्या हाल-चाल है?''

लेकिन सोर्सराम जी ज्यों ही हाल-चाल बताने लगते, वह अपनी लाइन निबटाने में लग जाता। इसी तरह काफ़ी देर चला। मैंने सोर्सराम जी को इशारे में जताया कि मैं जाकर लाइन में लग जाता हूं। इस पर सोर्सराम जी ने मुस्करा कर मुझे इशारा किया कि ज़रा ठहरो, अभी काम हो जाएगा।

तभी मैंने खिड़की के बाहर देखा कि लाइन में जो आदमी मेरे बिल्कुल आगे खड़ा था, वह अपनी बारी आने पर टिकट बनवाने लग गया था। और मैं भीतर अभी भी सोर्स के पास ही बैठा था। धीरे से मैं बोला, "अच्छा, मैं चलूं, कुछ जल्दी है।"

टिकट बाबू बत्तीसी दिखा, बोले, "अरे साहब, बैठिए भी! अभी-अभी तो आप आए हैं। अभी तो आपसे कोई बात भी नहीं हुई। ज़रा इन पांच-दस आदमियों को निबटा दूं, फिर आपसे जमकर गप्प लगेगी।"

मैं मन मसोस कर बैठ गया। और इस तरह सारी लाइन निबटाने के चक्कर में पूरे डेढ़ घंटे बैठकर हमने सोर्स द्वारा रिज़र्वेशन कराया और अहसान से दबकर बाहर आए।

मुस्कराते हुए सोर्सराम बोले, "कुर्सी पर आराम से बैठकर रिज़र्वेशन होते कभी देखा है? बाहर लाइन में तो जेब कटने का खतरा रहता है। यहां भरोसे से बैठकर रिज़र्वेशन करा लिया, बिना किसी परेशानी के। इसीलिए तो कहते हैं कि सोर्स से काम आसान हो जाता है, नहीं तो अटके रहो।"

मैंने मन ही मन उस मनहूस घड़ी को कोसा जिसमें बिना किसी सोर्स के सोर्सराम जी ने मुझसे दोस्ती गांठी थी।

प्रश्न अभ्यास

(1) नीचे लिखा वाक्य पढ़कर प्रश्नों के उत्तर दो।

"सोर्सराम जी को ढूंढ़ निकालना कोई मुश्किल काम नहीं है।"

(क) सोर्सराम जी को किस प्रकार पहचाना जा सकता है? उनके व्यक्तित्व के बारे में पाठ से एक वाक्य उद्धृत करो।

(ख) सोर्सराम जी का असली नाम क्या है? उन्हें सोर्सराम क्यों कहा जाता है?

(ग) सोर्सराम जी की हॉबी क्या है? वे नए-नए दोस्त किस प्रकार ढूंढ़ते हैं?

(घ) सोर्सों का अक्षय भंडार घटने न पाए, इसके लिए वे क्या करते हैं?

(2) सोर्सराम टिंडों की प्रशंसा किस प्रकार करते हैं?

(3) सोर्सराम की तर्क पद्धति किस तरह से चलती है?

(4) नीचे लिखे वाक्य को पढ़ो और प्रश्नों के उत्तर दो।

"अगर मुझे करना है, तो अपनी स्टाइल में ही करूंगा।"

(क) यह वाक्य कहानी में किसने कहा है? यहां पर किस काम को करने की बात कही जा रही है?

(ख) सोर्सराम जी का 'अपना स्टाइल' क्या है?

(ग) वे हर काम को किस उद्देश्य से करते हैं?

(घ) नींबू वाले में कौन-कौन से हुनर हो सकते हैं?

(5) क्या बिना सोर्स के कोई काम नहीं हो सकता? अपनी राय लिखो

(6) साड़ी खरीदने के लिए खन्ना के पास जाना क्यों जरूरी है?

(7) नीचे लिखा वाक्य पढ़कर प्रश्नों के उत्तर दो।

"यह सेट खुला हुआ छोड़े जा रहा हूं, कोई छेड़े न, कोई बन्द भी न करे।"

(क) यह वाक्य किसने और कब कहा?

(ख) छक्कन के लड़के को चाय-नाश्ता क्यों कराया गया? इस प्रसंग में 'इंटर्वल' शब्द का इस्तेमाल क्यों किया गया है?

(ग) छक्कन का लड़का कौन-सा काम जानता है? क्या उसे यह काम करना अच्छी तरह से आता है?

(घ) रेडियो सेट को खुला हुआ छोड़कर वह क्यों चला गया?

(8) निम्नलिखित गद्यांश का अर्थ स्पष्ट करो—

"इस तरह अमुक का काम अमुक से करवाने की चर्चा कर सारे अमुक लोगों को वे अपने बस्ते में बंद कर रखेंगे और मौके-बेमौके सारे अमुकों को रेजगारी की तरह खनखनाया करेंगे, भिड़ाया करेंगे।"

(9) इस कहानी में प्रयुक्त हुए अंग्रेज़ी शब्दों का चयन करो। फिर उन्हें लिखकर उनके सामने उनके समानार्थी हिन्दी शब्द लिखो।

(10) रेल यात्रा के लिए सीटों का रिज़र्वेशन कराने के सिलसिले में जो अनुभव हुआ, उससे क्या शिक्षा मिलती है?

सही उत्तरों पर √ निशान लगाओ।

(क) हमें न्यायपूर्ण तरीके से ही अपना काम कराना चाहिए।

(ख) सोर्स ढूंढ़ने या सोर्स से काम कराने की प्रवृत्ति ठीक नहीं।

(ग) टिकट बाबू को ऐसी नीति अपनानी चाहिए कि मित्रता भी बनी रहे और लाइन वाले भी न भड़कें।

(घ) सरकारी कर्मचारी को परेशानी या धर्म संकट में नहीं डालना चाहिए।

नरेन्द्र कोहली

नरेन्द्र कोहली का जन्म स्यालकोट में 6 जनवरी, 1940 को हुआ था। इन्होंने एम.ए. तक शिक्षा प्राप्त की तत्पश्चात दिल्ली विश्वविद्यालय से पीएच.डी. की उपाधि प्राप्त की। आजकल आप वरिष्ठ हिन्दी प्राध्यापक के रूप में दिल्ली विश्वविद्यालय से सम्बद्ध हस्तिनापुर महाविद्यालय में कार्य कर रहे हैं। अध्यापन के साथ-साथ ये निरंतर प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में लिखते रहते हैं।

नरेन्द्र कोहली ने कहानियों के साथ-साथ उपन्यास और नाटक भी लिखे हैं। राम-कथा को लेकर इन्होंने कुछ प्रयोग भी किए हैं जिन पर महत्वपूर्ण चर्चा हुई है। पारम्परिक राम-कथा को इन्होंने नया रूप प्रदान किया है। इनकी लिखी राम-कथा पांच भागों में प्रकाशित हुई है— ***'दीक्षा', 'अवसर', 'संघर्ष की ओर', 'युद्ध'*** तथा ***'पुनरारम्भ'***। इनकी कहानियों एवं व्यंग्य रचनाओं की पुस्तकों के नाम हैं— ***'एक और लाल तिकोन', 'पांच एब्सर्ड उपन्यास', 'आधुनिक लड़की की पीड़ा', 'जगाने का अपराध', 'मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएं'*** तथा ***'त्रासदियां'***।

नरेन्द्र कोहली के लेखन में व्यंग्य का स्वर प्रमुख रहता है। हमारे सामाजिक और राजनीतिक जीवन में व्याप्त विसंगतियों ने कोहली जी का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट कर रखा है। इन्हें पाठकों तक पहुंचाने के लिए ये किसी ऐसी परिस्थिति को चुन लेते हैं जिसके चित्रण से वह पाठकों के सम्मुख रेखांकित होकर स्पष्ट हो उठती है। हिन्दी के गिने चुने व्यंग्य लेखकों में नरेन्द्र कोहली की गणना होती है।

'दुर्घटना' नरेन्द्र कोहली की प्रतिनिधि रचना है। इसके माध्यम से लेखक ने ज्योतिषियों पर तो व्यंग्य कसा ही है, साथ ही हमारे सरकारी तंत्र की भी इन्होंने अच्छी खबर ली है। अखबारों में छपने वाली भविष्यवाणियों पर बहुत से लोग विश्वास करते हैं। किंतु उनमें कितना सार होता है, यह कोई लेखक से पूछे। इस प्रसंग में लेखक ने जो पत्र लिखा है वह कल्पना की अच्छी उड़ान है। यहां लेखक के निर्मल हास्य से पाठक के अधरों पर मुस्कान आ जाती है। आगे चलकर लेखक ने सरकारी विभाग पर जो व्यंग्य वाण चलाए हैं, उनसे नरेन्द्र कोहली की व्यंग्य प्रतिभा की पहचान मिलती है।

दुर्घटना

मैं दफ्तर जाने के लिए तैयार होकर बाहर निकला ही था कि मेरी पत्नी दौड़ कर मेरे सामने ज़मीन पर घुटनों के बल ऐसे आ बैठी जैसे लोग मुगल बादशाहों के सामने बैठा करते थे। उसने मेरे पैर भी पकड़ लिए। मैंने यह दृश्य आज तक केवल फिल्मों में ही देखा था। इसलिए इसे पत्नी का व्यवहार न मान कर उसका अभिनय ही माना। पर घर का बरामदा कोई मंच तो था नहीं। यहां अभिनय का कोई अर्थ नहीं था। या यह रिहर्सल मात्र है क्या? रिहर्सल का क्या है, उपयुक्त स्थान के अभाव में कहीं भी संपन्न हो जाती है। सो घर के बरामदे में ही सही।

मैंने पूछा, "क्या बात है?"

"तुम्हें मेरी कसम! मेरे सिर की कसम!" वह बड़े मैलोड्रेमेटिक अंदाज़ में बोली। मैं डरा, कहीं फ़र्श पर सिर ही न दे मारे। बोली, "आज दफ्तर साइकिल पर मत जाओ।"

"क्यों?" मैंने अपनी भौंचक स्थिति से उबरने का प्रयत्न किया, "साइकिल में पंक्चर है क्या?"

"नहीं!" उसकी आंखों में आंसू तैर आए, "मेरी बात को मज़ाक में मत टालो। मुझे अनाथ करने का प्रयत्न मत करो।"

मैं घबराया, "क्या बात है भई! कुछ मालूम भी तो हो।"

"देखो!" उसने मुझे बड़ी करुण दृष्टि से देखा, जैसे उसने जिगर का सारा दर्द अपनी आंखों में उंडेल दिया हो, जिसके बारे में कहा गया है, 'सारे जहां का दर्द हमारे जिगर में है' "मैंने तुम्हारा साप्ताहिक भविष्य पढ़ा है।"

"तो क्या हुआ", मैंने कुछ और अटपटा कर पूछा, "क्या इस सप्ताह दफ्तर से साइकिल के चोरी जाने का योग है?"

"नहीं!" वह बोली, "तीव्रगामी वाहन से दुर्घटना का भय है।"

"ओह!" मैंने इतना ही कहा, पर मन में पचासों बातें घूम गईं। किस युग में रहती है यह मेरी पतिपरायणा पत्नी। यह साइकिल को भी 'तीव्रगामी' वाहन मानती है। यह तो तय था कि मुझे उसके बुद्धि के अनुसार नहीं चलना है, पर मुझे अपनी बुद्धि से तो सोचना ही था और मेरी सोच तो विज्ञान से लेकर भाषा विज्ञान तक एक साथ घूम गई। क्या अर्थ

था इस वाक्य का? मैं तीव्रगामी वाहन पर चलूंगा तो दुर्घटना का भय है, या तीव्रगामी वाहन मुझ पर आ चढ़ेगा? यदि मैं साइकिल पर जाऊं तो बस मुझे कुचल सकती है, या बस में जाऊं तो वह दुर्घटनाग्रस्त हो सकती है और मैं मर सकता हूं? यदि मैं दफ्तर जाऊं ही नहीं, घर में ही बैठा रहूं तो कोई तीव्रगामी वाहन, जैसे आकाश पर उड़ता हुआ विमान मेरे घर पर गिर सकता है। किसी मित्र के घर जा बैठूं, दफ्तर चला जाऊं। विमान तो कहीं भी गिर सकता है। तो अपना या अपने किसी मित्र का घर क्यों ध्वस्त कराऊं। विमान को मुझ पर ही गिरना है तो मैं दफ्तर में ही जा बैठूं। कम से कम मेरे घर का तो नुकसान नहीं होगा। मेरा तो जो होगा, सो होगा ही।

पत्नी से पूछा, "तो दफ्तर न जाऊं?"

"दफ्तर जाने से कौन रोक रहा है।" वह बोली।

उसकी आवाज़ की थरथराहट में से बोलती घबराहट को मैं पहचान रहा था। मेरा दफ्तर न जाना उसे पसंद नहीं था। दफ्तर नहीं जाऊंगा तो मित्रों के घर चला जाऊंगा।

"तो दफ्तर कैसे जाऊं? पैदल?" मैंने पूछा।

"नहीं! नहीं!" वह और भी घबरा कर बोली। इस घबराहट का कारण पहले से भी अधिक स्पष्ट था। बात यह है कि जब कभी हम दोनों एक साथ चलते हैं तो वह हमेशा पिछड़ जाती है और मैं उसे तीव्रगामी वाहन दिखाई पड़ने लगता हूं।

"तो कैसे जाऊं?"

"आज बस पर चले जाओ।" उसने नकद साठ पैसे मेरी हथेली पर धर दिए। इस लक्ष्मीरूपा स्त्री को देख मेरे मन में आया कि काश! कहीं इसके मन में मेरी सुरक्षा के विचार से टैक्सी का ध्यान आया होता तो वह मेरी हथेली पर टैक्सी का किराया रख देती। मैं बस में चला जाता और जो पैसे बचते, उसमें कुछ चाय-वाय...।

पर मन ने धिक्कारा, पत्नी और सरकार में कुछ तो भेद करना चाहिए। सरकार के ही समान पत्नी को लूटने की इच्छा कोई अच्छी बात तो नहीं है। हर समय खर्च और बिल की हेरा-फेरी।

बस में बैठा तो तीव्रगामी वाहन की बात सोच, थोड़ा-सा भय मन में जागा, पर फिर मैंने अपने आपसे तर्क करना शुरू किया। तीव्रगामी वाहन का क्या तात्पर्य? विज्ञान-बुद्धि ने जोर मारा कि ज्योतिष के अर्थ को भी समय के अनुसार ग्रहण करना चाहिए। अरे ये बसें और कारें क्या तीव्रगामी वाहन हैं? तीव्रगामी वाहन हैं सुपर सॉनिक विमान, राकेट, अंतरिक्ष यान।

बस यहीं मेरे मन ने निर्णय कर लिया कि न तो मैं इन तीव्रगामी वाहनों में इस सप्ताह यात्रा करूंगा और न उनके मार्ग में आऊंगा। मेरा यह निश्चय

इतना पक्का था कि वह केवल चिंतन के धरातल तक सीमित नहीं रहा। वह मेरे कर्म में उतर आया। दफ्तर पहुंचते ही मैंने एक प्रार्थनापत्र लिखा।

अंतरिक्ष यात्रा अधिकारी
नई दिल्ली, भारत
श्रीमान्,

मैं अपने कुछ निजी कारणों से इस सप्ताह अंतरिक्ष यान में यात्रा करने में असमर्थ रहूंगा। कृपया अन्यथा न मानें और मुझे इस सप्ताह के लिए अंतरिक्ष यात्राओं में अनुपस्थित रहने की अनुमति प्रदान करें।

सधन्यवाद,

भवदीय,
नरेन्द्र कोहली

पत्र को डाक में छोड़ कर मैं निश्चिंत हो गया। मेरी ओर से पूरी किलेबंदी थी। अब तीव्रगामी वाहन मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकते थे।

पर मेरे निश्चिंत रहने से क्या होता है। मेरे उस एक छोटे से पत्र ने अनेक लोगों को चिंतित कर दिया। डीलिंग क्लर्क के पास जब मेरा पत्र पहुंचा तो उसने रजिस्टर के पृष्ठ उलटे और इस सप्ताह अंतरिक्ष उड़ान के लिए जाने वालों की सूची में मेरा नाम ढूंढा। पर वहां मेरा नाम नहीं था। उसने फिर ढूंढा, पर उसे फिर मेरा नाम नहीं मिला। मेरे नाम में एक बड़ी विकट विशेषता है—जिस सूची में मेरा नाम लिखा न गया हो, उस सूची को हज़ार बार पढ़ा जाए तो भी उसमें मेरा नाम नहीं मिलता और सरकारी सूचियों से तो मेरा ऐसा घनिष्ठ संबंध है कि यदि किसी सूची में मेरा नाम कोई भला आदमी लिख भी दे, तो पढ़ने वाले को वह नाम कभी भी वहां दिखाई नहीं देता।

तो उस क्लर्क को मेरा नाम सूची में मिला नहीं। उसने मेरा साप्ताहिक भविष्य तो पढ़ा नहीं था, उसने तो केवल सरकारी सूची ही पढ़ी थी। उसकी समझ में यही आया कि मेरा पत्र छुट्टी के लिए प्रार्थनापत्र था, और छुट्टी कोई तब ही मांगता है, जब उसकी ड्यूटी होती है। अर्थात् इस सप्ताह जिस व्यक्ति को अंतरिक्ष उड़ान का दायित्व सौंपा गया था वह कर्मचारी काम को टाल रहा है, इसलिए बहाना मार कर छुट्टी लेना चाह रहा है। तो इसका अर्थ यह हुआ कि इस व्यक्ति का नाम इस हफ्ते उड़ान भरने वालों की सूची में होना चाहिए था, पर है नहीं। निश्चित रूप से ऐसा, सूची तैयार करने वाले की असावधानी के कारण हुआ है। सूची उसके सैक्शन अफसर ने तैयार की थी। अतः यह सैक्शन अफसर की ही भूल थी।

वह कर्मचारी ही क्या जो अपने अधिकारी की भूल का सदुपयोग न

करे। क्लर्क उठ कर अंडर सेक्रेटरी के पास जा पहुंचा, "साहब! इस अंतरिक्ष यात्री का नाम इस उड़ान-सूची में ही नहीं है। सैक्शन अफसर साहब अपनी सीट पर नहीं हैं इसलिए यह मैटर आपके नोटिस में ला रहा हूं। अब आप जैसा आदेश दें।"

अंडर सेक्रेटरी ने मेरा पत्र देखा, सूची देखी और फिर क्लर्क का मुखड़ा देखा, "काम तो यह सारा सीक्रेट ही है, पर इतना सीक्रेट भी नहीं है कि उड़ान भरने वाले का नाम उड़ान सूची से भी छिपा कर रखा जाए। तुम्हारा यह सैक्शन अफसर एकदम नाकारा है। अभी इसे मीमो भिजवाता हूं। पर तब तक तुम इस उड़ाकू की फाइल ढूंढ कर लाओ।"

क्लर्क ने बहुत सिर मारा, पर उस गरीब को जब अपनी सूची में मेरा नाम तक नहीं मिला तो अलमारी में फाइल कहां से मिल जाती। उसने टॉप घबराहट में अंडर सेक्रेटरी को तुरन्त सूचना दी कि इस उड़ाकू की फाइल भी रिकार्ड से गायब है। इसका अर्थ यह हुआ कि यहां कोई भयंकर षड्यंत्र चल रहा है, जो हमारी उड़ानों को सैबोटाज करना चाहता है। उसने इस उड़ाकू का नाम सूची में से हटाने के पहले ही उसकी फाइल भी गायब कर दी है और उसका अनुमान है कि इस उड़ाकू से संबंधित सारे डाक्यूमैंट्स भी गायब कर दिए गए होंगे। यह तो संयोग से उड़ाकू की एप्लिकेशन आ गई, नहीं तो किसी को इस बात का पता भी न चल पाता और उड़ान के समय उड़ाकू गायब पाया जाता। यह राष्ट्रीय महत्व और प्रतिष्ठा का प्रश्न है और देशद्रोह का अत्यंत शोचनीय कांड भी। कृपया इस संबंध में तत्काल एक्शन लिया जाए।

अंडर सेक्रेटरी ने क्लर्क की टिप्पणी पढ़ी तो उनके हाथों के तोते उड़ गए। भारत सरकार के अति गोपनीय विभाग के अत्यंत गुप्त कार्यालय में यह घपला। बात तत्काल ऊपर तक पहुंचा दी गई।

मंत्रालय के मंत्री ने तत्काल जांच करवाई और यह सत्य खोज निकलवाया कि इस व्यक्ति का नाम पत्रिकाओं की विषय सूची में तो कभी-कभी होता है, कभी-कभी प्रकाशकों की पुस्तक सूची में भी होता है। अधिकांशतः वह बैंकों और सरकारी महकमों से उधार मांगने वालों की सूची में होता है, पर अंतरिक्ष उड़ान भरने वालों की सूची में वह कभी नहीं होता। इस जांच से सब लोग बहुत संतुष्ट हुए पर भारत सरकार का सतर्कता विभाग अत्यंत चिंतित हो उठा। वह तर्क कर उठा कि आखिर एक साधारण व्यक्ति को यह कैसे मालूम हो गया कि इस सप्ताह भारत कोई अंतरिक्ष यान छोड़ने वाला है? इस व्यक्ति को इस सूचना का मिलना निश्चित रूप से प्रमाणित करता है कि कहीं से गोपनीय सूचनाएं भी बाहर निकल रही हैं और यह बहुत गंभीर बात है।

मुझे पकड़ मंगाने के आदेश जारी हुए तो पहली बात मेरी कल्पना में

यह जागी कि पत्रिकाओं में छपने वाला साप्ताहिक भविष्य कैसे सच प्रमाणित होता है और तीव्रगामी वाहनों से दुर्घटना का भय मुझे किस रूप में था।

प्रश्न अभ्यास

(1) नीचे लिखे वाक्य पढ़कर प्रश्नों के उत्तर दो।

''तुम्हें मेरी कसम! मेरे सिर की कसम!''

(क) ये वाक्य किसने बोले हैं? उसने कसम क्यों खाई है?

(ख) ये वाक्य लेखक के अनुसार किस अंदाज़ में बोले गए?

(ग) पत्नी ने पति को साइकिल पर जाने से मना क्यों कर दिया?

(2) साप्ताहिक भविष्य में लेखक के बारे में क्या भविष्यवाणी की गई थी?

(3) लेखक के मन में कौन-सी पचासों बातें घूम गईं?

(4) नीचे लिखा वाक्य पढ़कर प्रश्नों के उत्तर दो।

''सरकार के ही समान पत्नी को लूटने की इच्छा कोई अच्छी बात तो नहीं है।''

(क) पत्नी को लूटने की बात किस संदर्भ में कही गई है?

(ख) लेखक की पत्नी ने उसे साठ पैसे किसलिए दिए?

(ग) यदि पत्नी बस किराए की बजाय टैक्सी का किराया देती, तो क्या लेखक टैक्सी से जाता?

(घ) क्या साइकिल एक तीव्रगामी वाहन है? यदि नहीं, तो तीव्रगामी वाहन किसे कहेंगे? उदाहरण देकर बताओ।

(5) दफ्तर पहुंचते ही लेखक ने किसे प्रार्थनापत्र लिखा? उसमें क्या लिखा था? तुम्हारी राय में भारत का 'अंतरिक्ष यात्रा अधिकारी' होता है या नहीं?

(6) तीव्रगामी वाहन से लेखक कैसे बचा?

(7) प्रार्थना-पत्र के बहाने व्यवस्था की किन बातों पर व्यंग्य किया गया है?

(8) कहानी के अंत में किस षड्यंत्र का जिक्र आया है? क्या सचमुच कोई षड्यंत्र रचा गया था?

(9) साप्ताहिक भविष्यवाणी के कारण लेखक का दिन कैसा बीता?

(10) अखबारों में छपनेवाली साप्ताहिक भविष्यवाणियों पर विश्वास करना चाहिए या नहीं? तर्क पूर्ण उत्तर दो।

(11) सैक्शन अफसर की चुगली अंडर सेक्रेट्री से करने का मौका क्लर्क को कैसे मिल गया?

(12) अंडर सेक्रेट्री के हाथों के तोते क्यों उड़ गए?

यह जानी कि पत्रिकाओं में छपने वाला साप्ताहिक भविष्य कैसे सच प्रमाणित होता है और तीव्रगामी वाहनों से दुर्घटना का भय वहां किस रूप में था।

प्रश्न अभ्यास

(1) नीचे लिखे वाक्य पढ़कर प्रश्नों के उत्तर दो।

"तुम्हें मेरी कसम! मेरे सिर की कसम!"

(क) ये वाक्य किसने बोले हैं? इसमें कसम क्यों खाई है?
(ख) ये वाक्य लेखक के अनुसार किस अवसर पर बोले गए?
(ग) पत्नी ने पति को साइकिल पर जाने से मना क्यों कर दिया?

(2) साप्ताहिक भविष्य में लेखक के बारे में क्या भविष्यवाणी की गई थी?

(3) लेखक के मन में कौन-सी पुरानी बातें घूम गईं?

(4) नीचे लिखा वाक्य पढ़कर प्रश्नों के उत्तर दो।

"सरकार के ही समान पत्नी को लूटने की इच्छा कोई अच्छी बात तो नहीं है।"

(क) पत्नी को लूटने की बात किस संदर्भ में कही गई है?
(ख) लेखक की पत्नी ने उसे सात पैसे किसलिए दिए?
(ग) यदि पत्नी बस किराए की बजाय टैक्सी का किराया देती, तो क्या लेखक टैक्सी से जाता?
(घ) क्या साइकिल एक तीव्रगामी वाहन है? यदि नहीं, तो तीव्रगामी वाहन किसे कहेंगे? उदाहरण देकर बताओ।

(5) दफ्तर पहुँचते ही लेखक ने किसे प्रार्थनापत्र लिखा? उसमें क्या लिखा था? तुम्हारी राय में भारत का 'अंतरिक्ष यात्रा अधिकारी' होता है या नहीं?

(6) तीव्रगामी वाहन से लेखक कैसे बचा?

(7) प्रार्थना-पत्र के बहाने व्यवस्था की किन बातों पर व्यंग्य किया गया है?

(8) कहानी के अंत में किस षड्यंत्र का जिक्र आया है? क्या सचमुच कोई षड्यंत्र रचा गया था?

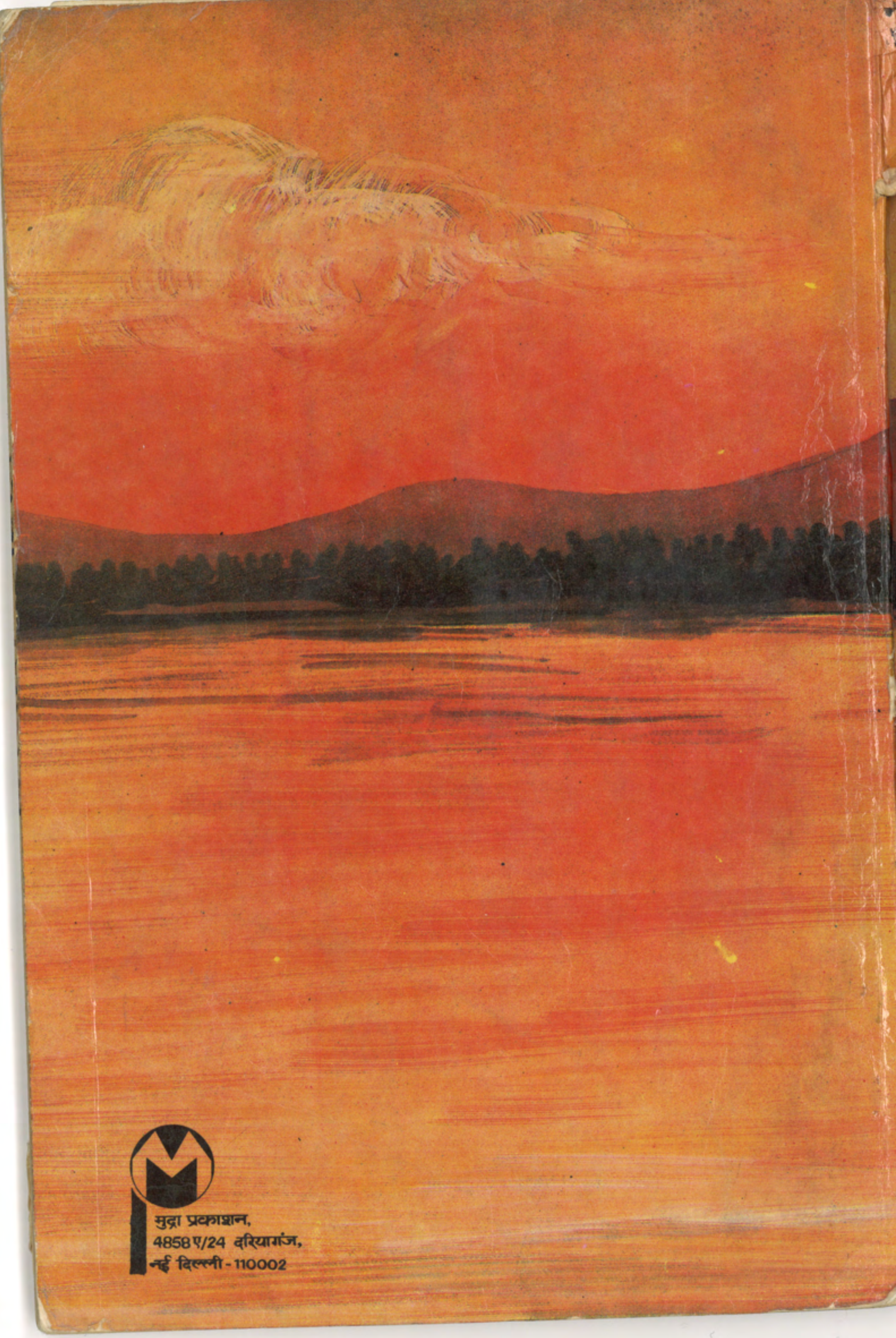
(9) साप्ताहिक भविष्यवाणी के कारण लेखक का दिन कैसा बीता?

(10) अखबारों में छपनेवाली साप्ताहिक भविष्यवाणियों पर विश्वास करना चाहिए या नहीं? तर्क पूर्ण उत्तर दो।

(11) सेक्शन अफसर को चपरासी ओहर सोकट्टी से [illegible] का मौका कैसा मिल गया?

(12) ओहर सोकट्टी के पाँवों के तले क्यों बह गए?





मुद्रा प्रकाशन,
4858 ए/24 दरियागंज,
नई दिल्ली - 110002